ISSN No. 2582-9548

nbt.india
एकः सूते सकलम्

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

पुस्तक संस्कृति

वर्ष-11 ◆ अंक-3 ◆ मई-जून 2026 ◆ मूल्य ₹40.00

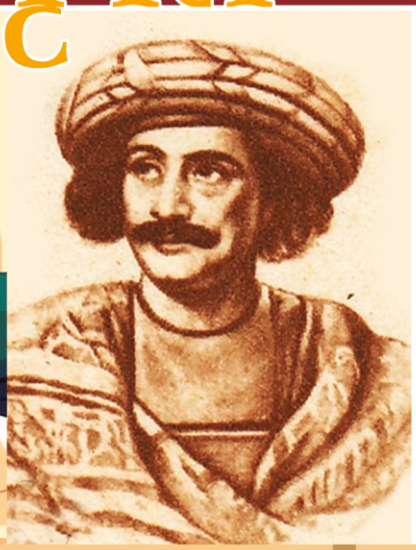

संस्कृति के साझा सरोकारों में बसी जीवन-सुगंध • पुस्तकें, जिन्होंने मुझे लेखक बनाया

1857 : अब नहीं रहा वह आखिरी गवाह • जैव विविधता से बँधीं मानवता की साँसें

बोगोटा अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला 2026 में
भारत सम्मानित अतिथि देश

21 अप्रैल, 2026 को उद्घाटित बोगोटा अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला 2026 में भारत ने पहली बार सम्मानित अतिथि देश के रूप में भाग लिया। पुस्तक मेला में विशेष रूप से निर्मित 'भारत मंडप' और भारत की 'सम्मानित अतिथि देश' के रूप में प्रस्तुति भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा कोलंबिया स्थित भारतीय दूतावास के सहयोग से आयोजित की गई, जिसमें राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत कार्यान्वयन एजेंसी के रूप में सम्मिलित हुआ।

21 अप्रैल से 04 मई, 2026 तक आयोजित इस बोगोटा अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला में भारत मंडप का उद्घाटन संयुक्त रूप से कोलंबिया की संस्कृति, कला और ज्ञान मंत्री सुश्री यानाई कडमानी फोनरोडोना और कोलंबिया और इक्वाडोर में भारत के राजदूत महामहिम श्री वनलालहुमा द्वारा किया गया।

विदित हो कि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अध्यक्ष प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे द्वारा 50 सदस्यीय भारतीय प्रतिनिधिमंडल का प्रतिनिधित्व किया गया, जिसमें न्यास के अनेक अधिकारियों समेत भारत के प्रतिष्ठित लेखक, कवि, पत्रकार, चित्रकार और कलाकार सम्मिलित हुए। न्यास की ओर से, न्यास में मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक तथा भारत, सम्मानित अतिथि प्रस्तुति परियोजना के प्रमुख श्री कुमार विक्रम एवं असमिया भाषा के संपादक श्री दीप सैकिया मुख्य रूप से शामिल रहे।

(विस्तृत रपट अगले अंक में)

प्रधान संपादक

प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे

संपादक

दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग

अल्पना भसीन, विजयलक्ष्मी पाण्डेय

विज्ञापन एवं प्रसार

जनसंपर्क अनुभाग

उत्पादन

अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

चित्रांकन

फजरुद्दीन

सज्जा/डिजाइन

ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

सदस्यता शुल्क

व्यक्तियों के लिए

एक प्रति : ₹ 40.00

वार्षिक : ₹ 225.00

(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार

संपादक

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

पता : 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया,

वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070

फोन : 011-26707876

ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और सालासर इमेजिंग सिस्टम्स, ए-97, सेक्टर-58, नोएडा-201301 (उत्तर प्रदेश) से मुद्रित।

संपादक

दीपक कुमार गुप्ता

सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

ISSN NO. 2582–9548

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी

वर्ष-11; अंक-3; मई-जून, 2026

इस अंक में

संपादकीय — *प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे* 2

संग्रहालय — **भूत-वर्तमान-भविष्य के बीच सेतु की भूमिका निभाते हैं संग्रहालय**—*अरविंद श्रीधर* 3

संस्कृति — **संस्कृति के साझा सरोकारों में बसी जीवन-सुगंध**—*डॉ. राजेश कुमार व्यास* 7

पुस्तक — **पुस्तकें, जिन्होंने मुझे लेखक बनाया**—*राजेंद्र गौतम* 12

इतिहास — **सिंध का विभाजन और उपहास की पीड़ा**—*भगवान अटलानी* 16

इतिहास — **1857 : अब नहीं रहा वह आखिरी गवाह**—*देवेंद्र चौबे* 18

विज्ञान — **भारत प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में निरंतर रच रहा है इतिहास**—*प्रमोद भार्गव* 22

संस्कृति — **अंडमान तथा निकोबार की लोक कथाओं में अभिव्यक्त आस्था और विश्वास**—*डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी* 25

व्यक्तित्व — **नारी अस्मिता के उन्नायक राजा राममोहन राय**—*डॉ. शैलेश कुमार मिश्र* 28

संगीत — **विश्व संगीत दिवस : आत्मा की खोज से रस और रंजकता तक**—*रघुवीर सिंह* 30

विज्ञान — **जैव विविधता से बँधीं मानवता की साँसें**—*डॉ. शुभ्रता मिश्रा* 33

व्यक्तित्व — **राष्ट्रीय गौरव के प्रतीक : भगवान बिरसा मुंडा**—*डॉ. शत्रुघ्न कुमार पाण्डेय* 36

योग — **योग : आधुनिक युग में आवश्यकता, स्वास्थ्य और वैश्विक महत्व**—*डॉ. हर्ष कुमार शुक्ला* 39

व्यक्तित्व — **महाराणा प्रताप : स्वाधीनता और राष्ट्र-चेतना के प्रतीक**—*डॉ. स्वाति जैन* 42

इतिहास — **महारानी दुर्गावती : स्वाभिमान, साहस और बलिदान की अमर कथा**—*माधवी उइके* 45

पुस्तक समीक्षा 49

साहित्यिक गतिविधियाँ 59

पुस्तकें मिलीं 64

'वसुधैव कुटुंबकम्' का प्रसार करता बोगोटा अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला

गत माह 23 अप्रैल को सारी दुनिया में विश्व पुस्तक दिवस एवं प्रतिलिप्यधिकार दिवस मनाया गया। पुस्तक समाज द्वारा यह दिवस हर वर्ष पूरे उत्साह के साथ मनाया जाता है। यह दिन पाठकों, लेखकों और प्रकाशकों के प्रति सम्मान और आभार प्रकट करने तथा पुस्तक पठन-आदत को बढ़ावा देने का एक वैश्विक अवसर होता है। इस दिवस की ऐतिहासिकता कोई बहुत पुरानी नहीं है—'यूनेस्को' ने वर्ष 1995 में इस दिवस की घोषणा की थी।

भारतीय परंपरा में 'पुस्तक' शब्द का भले ही आधुनिक संदर्भ में उपयोग किया जाता है, किंतु 'ग्रंथ' के रूप में हम इसे कई हजार वर्ष पूर्व से जानते और समझते रहे हैं। जब संसार में सभ्यता अपने पालने में थी भारतवर्ष वेद के ज्ञान से समृद्ध और संपन्न था। हमारे ऋषि-मुनियों, विद्वानों और विदुषियों ने चार वेदों की रचना कर भारत-भू को ज्ञान की समृद्धता की प्रस्थान भूमि के रूप में स्थापित कर दिया था। आज भी समस्त विश्व में वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत और श्रीमद्भगवद्गीता ज्ञान और विचार के प्राचीनतम स्रोत के रूप में जाने जाते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि हमारी संस्कृति में जो ज्ञान 'श्रुति' के रूप में तथा कालांतर में ताड़ के पत्तों पर लिखित रूप में देखा गया वह अब विज्ञान की आधुनिक तकनीक और प्रौद्योगिकी के विकास के कारण 'कागज' पर प्रतिबिंबित होने लगे हैं, जिसे हम आज 'पुस्तक' के रूप में देखते हैं।

चूँकि मनुष्यमात्र एक उत्सवधर्मी प्रजाति है, अतः यह अनायास नहीं है कि हमने तमाम अन्य पर्व, त्योहार और मेलों की तरह पुस्तक को भी अपनी उत्सवधर्मिता का एक अंग बना लिया और विश्वभर में पुस्तक मेले, पुस्तव उत्सव या महोत्सव मनाए जाने लगे। आज जबकि तकनीक और प्रौद्योगिकी ने सारी वसुधा को ही एक कुटुंब या परिवार या गाँव बना दिया है, ऐसे में भौगोलिक दूरी का आज कोई महत्व या मायने नहीं रह गया है। पुस्तक से जुड़े मेले और उत्सव भी इसका अपवाद नहीं रहे—आज भारत से हजारों किलोमीटर, लगभग 15,000 किलोमीटर, दूर कोलंबिया की राजधानी, बोगोटा में, लैटिन अमेरिका का सबसे प्रमुख पुस्तक मेला, बोगोटा अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला (FILBo)—21 अप्रैल से 4 मई, 2026—में जब भारत 'सम्मानित अतिथि देश' के रूप में भाग लेने आया हुआ है तो यहाँ भारत से आए हम सब लोग 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को बड़ी गहराई से अनुभूत कर रहे हैं।

इस अवसर पर भारत यहाँ अपनी समृद्ध विरासत, भाषायी विविधता और अपनी उपलब्धियों का भव्य प्रदर्शन कर रहा है। तीन हजार वर्गमीटर में फैला 'भारत मंडप' भारतीय वास्तु कला का जीवंत उदाहरण प्रस्तुत कर रहा है। मंडप में अनेक प्रदर्शनियाँ लगायी गई हैं। विदित हो कि भारत नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के माध्यम से विश्व के दस से अधिक देशों में लगने वाले पुस्तक मेलों में भाग लेता है। भारत की राजधानी में नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला का भी हम आयोजन करते हैं। इस पुस्तक मेला में भारत 'पढ़ें और जानें भारत' के घोष वाक्य के साथ शामिल हुआ है तथा यह भी एक खास बात है कि हमारा शुभंकर परिवार पठन की परंपरा को प्रमुखता के साथ प्रस्तुत करता है।

कोलंबिया को 'दक्षिण अमेरिका का प्रवेशद्वार' कहा जाता है और भारत की तरह इस देश की सीमाएँ भी दो महासागरों—प्रशांत महासागर और कैरेबियन सागर—को स्पर्श करती हैं। भारत की तरह कोलंबिया में भी पुस्तक-पठन की अपनी एक समृद्ध संस्कृति है। देश की राजधानी बोगोटा को वर्ष 2007 में यूनेस्को द्वारा विश्व पुस्तक राजधानी भी घोषित किया गया था। कोलंबिया में लोगों का पुस्तकों के प्रति यह जुनून ही है कि अगले वर्ष, 2027 में, देश के दूसरे सबसे बड़े शहर, मेडलिन को यूनेस्को ने विश्व पुस्तक राजधानी के रूप में चयन किया है। विदित हो कि इस वर्ष, 2026 को मोरक्को की राजधानी रबात को यूनेस्को ने विश्व पुस्तक राजधानी के रूप में चयनित किया है। भारत की राजधानी नई दिल्ली भी वर्ष 2003 में विश्व पुस्तक राजधानी रह चुका है। विश्व प्रसिद्ध नोबेल साहित्य पुरस्कार प्राप्त लेखक, गैब्रियल गार्सिया मार्केज कोलंबिया के ही हैं, जिन्होंने कोलंबिया की संस्कृति और इतिहास से पूरी दुनिया को परिचित कराया।

और अब अंत में, अंतरराष्ट्रीय योग दिवस की चर्चा करना प्रासंगिक प्रतीत होता है। जैसा कि विदित है भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के प्रयासों से वर्ष 2015 से पूरे विश्व में, संयुक्त राष्ट्र द्वारा अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के रूप में 21 जून का चयन किया गया था। इस वर्ष भी 21 जून को पूरे विश्व में 12वाँ योग दिवस मनाया जाएगा। इस वर्ष का थीम है—योग के माध्यम से महिला सशक्तीकरण। प्रधानमंत्री श्री मोदी ने सही ही कहा है कि—इस सदी में हमें यह एहसास हुआ है कि योग ने विश्व को एकजुट किया है।

(प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे)
प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

भूत-वर्तमान-भविष्य के बीच सेतु की भूमिका निभाते हैं संग्रहालय

संग्रह मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यह आदिम काल से ही मनुष्यों में मौजूद रही है। भविष्य अथवा आपातकाल के लिए कंदराओं में खाद्य-सामग्री संगृहीत करने से लेकर, अपने कुल-वंश का महिमा-मंडन करने वाली वस्तुओं के संग्रह तक, यह प्रवृत्ति निर्बाध गतिमान है।

अरविंद श्रीधर

जन्म : 23 जून 1964

शिक्षा : राजनीति विज्ञान में परा स्नातक

प्रकाशन : उज्जयिनी पर केंद्रित पुस्तक 'अमृतधरा अवन्तिका' के अतिरिक्त, अनेक लेख, आलेख प्रकाशित।

कार्यक्षेत्र : 'मेरा युवा भारत' (पूर्व में ने.यु.कें. संगठन), युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय, भारत सरकार में जिला युवा समन्वयक से लेकर राज्य निदेशक के रूप में लगभग 34 वर्ष युवाओं के बीच कार्य का अनुभव। विभाग के मुखपत्र 'युवा संदेश' के लिए लेखन और संपादन में सक्रिय सहभागिता का निर्वहन।

संप्रति : राज्य निदेशक, ने.यु.कें. संगठन (मध्य प्रदेश) के पद से सेवानिवृत्ति के उपरांत निदेशक, माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल में सेवारत। माखनलाल चतुर्वेदी की विरासत पत्रिका 'कर्मवीर' के डिजिटल एडिशन karmveer.in का संपादन।

संपर्क : मोबाइल– 9425463768

ई-मेल– arvindshridhar@gmail.com

पुराने राजे-रजवाड़ों के वंशज आज भी अपनी बैठक की दीवारों पर वन्यजीवों और पुराने हथियारों की ट्रॉफी सजाकर रखते हैं। ऐसे संग्रह और उनके प्रदर्शन के पीछे यद्यपि अपने आपको समाज में कुछ विशिष्ट साबित करने का भाव होता है, लेकिन इससे प्राचीन वस्तुओं का संग्रहण और संरक्षण तो होता ही है।

अपने कुल-वंश को गौरवान्वित करने वाली वस्तुओं और प्रतीक-चिह्नों को संगृहीत-प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति केवल राजे-रजवाड़ों के वंशजों में ही प्रचलित हो ऐसा नहीं है। राजनेताओं, साहित्यकारों, व्यापारियों, कृषकों आदि के वंशज भी अपने पूर्वजों से संबंधित वस्तुएँ सहेजकर रखते रहे हैं।

संग्रह की यह प्रवृत्ति जब 'स्वांतः सुखाय', और आत्मश्लाघा के संकुचित दायरे में कैद रहती है, तब घर के बैठकखाने सजते हैं; और जब इसे 'सर्वजन हिताय-सर्वजन सुखाय' और 'सर्वजन दर्शनाय' के उद्दाम भाव का स्पर्श मिलता है, तब सार्वजनिक संग्रहालय आकार लेते हैं। आइए, संग्रहालयों के विकास-क्रम पर एक दृष्टि डालते हैं। शुरुआत पश्चिमी जगत से करते हैं।

प्राचीन रोम और यूनान में व्यक्तिगत संग्रह के प्रति विशेष रुझान रहा है। यूनानी धर्मस्थलों में विजित स्थान की मूर्तियाँ और अन्य वस्तुएँ संगृहीत की जाती रही हैं। मिस्र के एलेक्जेंड्रिया शहर में एक ऐसे शिक्षा संस्थान का जिक्र मिलता है, जिसमें 288 ईसा-पूर्व मूर्तियाँ, पूजा की वस्तुएँ, दान सामग्रियाँ, खगोल यंत्र, हाथी दाँत आदि संगृहीत किए जाते थे।

यूरोपीय देशों के सामंत, चर्च के उच्च पदासीन पदाधिकारी और धनिक लोग गहने, मूर्तियाँ, मोहरें सोने-चाँदी के सिक्के, कीमती वस्त्र और हस्तलिखित ग्रंथ आदि का संग्रह किया करते थे, लेकिन यह सार्वजनिक संग्रहालय नहीं थे और प्रायः निजी निवासों, पुरानी इमारतों अथवा चर्च के किसी कक्ष में ही वस्तुओं का भंडारण

किया जाता था। इस संग्रहण अथवा भंडारण के पीछे एक तरह से बेशकीमती वस्तुओं का संपत्ति के रूप में एकत्रीकरण ही प्रमुख ध्येय हुआ करता था।

पुनर्जागरण काल में जब कलाकृतियों, पुरासंपदा और अन्य प्राचीन जीवनोपयोगी वस्तुओं का प्रयोग ज्ञानार्जन के लिए करने की समझ पनपी, तब पृथक 'वीथिका' का निर्माण प्रारंभ हुआ और यूनानी शब्द 'म्यूजेज' से 'म्यूजियम' शब्द प्रचलन में आया।

'एशमोलियन संग्रहालय' विश्व का पहला सार्वजनिक संग्रहालय माना जाता है, जो 1683 में ऑक्सफोर्ड (इंग्लैंड) में एलियास एशमोल द्वारा दान दिये गए निजी संग्रह से प्रारंभ हुआ था।

1759 में उद्घाटित हुआ 'ब्रिटिश संग्रहालय' विश्व के सबसे प्रसिद्ध और प्राचीन संग्रहालयों में से एक है, जिसमें विश्वभर की 80 लाख से अधिक विविध वस्तुओं और कलाकृतियों का विशाल संग्रह मौजूद है।

19वीं शताब्दी में यूरोप के साथ-साथ अन्य देशों में भी सार्वजनिक संग्रहालयों की स्थापना का सिलसिला प्रारंभ हुआ, जो निरंतर जारी है।

अमेरिका में संग्रहालय की स्थापना का क्रम 1773 से प्रारंभ हुआ, जब कैरोलिना में 'चार्ल्सटन संग्रहालय' की स्थापना हुई। इसके बाद 'ललित कला संग्रहालय' (बोस्टन) और 'मेट्रोपॉलिटन म्यूजियम ऑफ आर्ट' (न्यूयॉर्क) जैसे संग्रहालय अस्तित्व में आए।

वाशिंगटन स्थित 'स्मिथसोनियन संस्थान' संग्रहालयों के संरक्षण, संवर्धन और संचालन के लिए महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। वर्तमान में यह संस्थान अमेरिका के 21 संग्रहालय और 14 अनुसंधान केंद्रों का प्रबंधन कुशलतापूर्वक सँभाल रहा है।

विश्व के अन्य प्रमुख संग्रहालय हैं—पेरिस का 'लूवर संग्रहालय', इटली का 'वेटिकन संग्रहालय', चीन का 'राष्ट्रीय संग्रहालय', जापान का 'टोक्यो राष्ट्रीय संग्रहालय', जर्मनी का 'मानव विज्ञान राष्ट्रीय संग्रहालय', ब्रिटेन का 'विक्टोरिया' और 'अल्बर्ट संग्रहालय' और दक्षिण कोरिया का 'राष्ट्रीय संग्रहालय'।

विश्व के अन्य देशों की तरह भारत में भी निजी संग्रह तो अस्तित्व में रहे हैं, लेकिन संग्रहालय की विधिवत शुरुआत 1814 में स्थापित 'एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल', कोलकाता की स्थापना से मानी जाती है। समिति द्वारा स्थापित संग्रहालय का प्रारंभिक नाम 'एशियाटिक सोसायटी म्यूजियम' था, जो बाद में 'इंपीरियल म्यूजियम' के नाम से जाना गया। आजकल इसे 'भारतीय संग्रहालय' कहा जाता है। यह भारत का पहला संग्रहालय भी है और सबसे समृद्ध भी।

एक रिपोर्ट के अनुसार, 1936 में भारत में कुल 105 संग्रहालय थे। उनमें से सिर्फ 80 ही ऐसे थे, जिन्हें संग्रहालय की श्रेणी में रखा जा सकता था। यह संख्या संग्रहालय स्थापित करने की भरपूर संभावनाओं और देश के विशाल आकार के अनुपात में मामूली कही जा सकती है, लेकिन इस तथ्य को भी ध्यान में रखा जाना जरूरी है कि उस दौरान देश स्वतंत्र नहीं था और भारतीय नेतृत्व का सर्वोपरि लक्ष्य देश को आजाद कराना था। फिर, संग्रहालय जैसे अधुनातन विचार से आम जनमानस का जुड़ाव भी प्रायः नहीं के बराबर ही था। बहुत थोड़ी-सी ही पुरा सामग्री तब तक व्यक्तिगत अथवा सार्वजनिक संग्रहालयों में संरक्षित की जा सकी थी, जबकि देश की विपुल पुरा संपदा बगैर किसी संरक्षण के यूँ ही यहाँ-वहाँ बिखरी हुई पड़ी थी। इसका फायदा उठाया उनलोगों ने, जो इसकी कीमत बखूबी जानते थे। ऐसे लोगों ने भारतीय सांस्कृतिक विरासत की सैकड़ों अनमोल कलाकृतियों को दुनियाभर के संस्थागत और व्यक्तिगत संग्राहकों तक पहुँचा दिया।

आज विश्व का शायद ही कोई ऐसा संग्रहालय होगा, जिसमें भारत की कोई-न-कोई अनमोल धरोहर प्रदर्शित न हो। शनैः-शनैः

स्थितियाँ बदलीं और प्राचीन धरोहरों को संरक्षित किए जाने की भावना बलवती हुई। यद्यपि, आम लोगों में विरासत और धरोहरों के संरक्षण के प्रति वैसा जिम्मेदारी का भाव तो अभी भी प्रायः नदारत ही है, जैसा पश्चिमी देशों के नागरिकों में देखने को मिलता है; लेकिन शासकीय स्तर पर इसके लिए सराहनीय प्रयास हुए हैं। राजस्थान और मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में कुछ निजी संग्रहालय भी सुरुचिपूर्ण तरीके से विकसित किये गए हैं।

स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव वर्ष तक आते-आते कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास, विज्ञान, मानव-विज्ञान सहित मानव-जीवन के लिए जरूरी लगभग हर विषय पर केंद्रित सहस्त्राधिक संग्रहालय देश में स्थापित किए जा चुके हैं।

देश के प्रमुख संग्रहालय हैं—भारतीय संग्रहालय (कोलकाता), सालारजंग म्यूजियम (हैदराबाद), नेशनल म्यूजियम (नई दिल्ली), छत्रपति शिवाजी महाराज वस्तु संग्रहालय (मुंबई), शासकीय संग्रहालय (चेन्नई), डॉ. भाऊ दाजी लाड़ म्यूजियम (मुंबई), सारनाथ म्यूजियम (सारनाथ), नेशनल गांधी म्यूजियम (नई दिल्ली), सरकारी संग्रहालय और कला गैलरी (चंडीगढ़), विक्टोरिया मेमोरियल हॉल (कोलकाता), शिवालिक फॉसिल पार्क (हिमाचल प्रदेश), राज्य संग्रहालय (भोपाल), इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय (भोपाल), अल्बर्ट हॉल संग्रहालय (जयपुर), राष्ट्रीय रेल संग्रहालय (नई दिल्ली), कैलिको म्यूजियम ऑफ टेक्सटाइल्स (अहमदाबाद), शंकर अंतरराष्ट्रीय गुड़िया संग्रहालय (दिल्ली), नेपियर संग्रहालय (तिरुअनंतपुरम), एच.ए.एल. हेरिटेज सेंटर और एयरोस्पेस संग्रहालय

(बेंगलुरु), राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय (बेंगलुरु) तथा माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान (भोपाल)।

यह संख्या दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही है, जो एक शुभ लक्षण है। यह रुझान बताता है कि एक समाज के रूप में हम अपनी समृद्ध धरोहरों के संरक्षण के प्रति देर से ही सही, सचेत हुए हैं।

भारत में जनजातीय समाज की कला-संस्कृति, हस्तशिल्प, नृत्य-गान एवं जीवन-शैली का विशिष्ट महत्व रहा है। लंबे अरसे तक इसे संरक्षित करने का कोई विशेष प्रयास नहीं हुआ। लेकिन भोपाल की श्यामला पहाड़ी पर स्थित 'इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय' बहुत हद तक इस शिकायत का निवारण कर देता है।

200 एकड़ में फैला मानव संग्रहालय, मानव-विकास और जनजातीय जीवन की कहानी जीवंत रूप से प्रस्तुत करता है। भारत की लगभग समस्त जनजातियों के आवास, पारंपरिक वाद्य यंत्र, कृषि उपकरण, वेशभूषा और अनुष्ठान आदि में प्रयुक्त वस्तुओं का अद्भुत संग्रह है मानव संग्रहालय की मुक्ताकाशी प्रदर्शनियों में।

संग्रहालय में प्रदर्शित प्रादर्श उनके मूल स्थानों से प्राप्त किये गए हैं, जिन्हें संबंधित जनजातीय समाज के पारंपरिक कारीगरों ने संग्रहालय परिसर में पुनर्स्थापित किया है। श्यामला पहाड़ी पर पूर्व से ही मौजूद प्रागैतिहासिक काल के 32 शैलाश्रयों के बीच स्थित यह जनजातीय संरचनाएँ वैज्ञानिक दृष्टिकोण और कलात्मक उत्कृष्टता के समन्वय का अद्भुत उदाहरण हैं।

भोपाल के जनजातीय संग्रहालय में जनजातीय कला-संस्कृति, इतिहास, जीवन-शैली और रीति-रिवाजों से संबंधित प्रादर्शों को सुरुचिपूर्ण तरीके से संरक्षित और प्रदर्शित किया गया है। जनजातीय नायकों टंट्या भील, भीमा नायक, खज्या नायक, संग्राम सिंह, शंकर शाह, रघुनाथ शाह, रानी दुर्गावती, बादल भोई, राजा भूत सिंह, ढेलन शाह आदि के जीवन-चरित्र को भी संग्रहालय में प्रदर्शित किया गया है। केवल राजधानी भोपाल में ही नहीं, छिंदवाड़ा, जबलपुर, खंडवा और बड़वानी जैसे स्थानों पर भी जनजातीय संग्रहालय और स्मारक स्थापित किये गए हैं।

जनजातीय समाज की विरासत को संरक्षित करने और ये राष्ट्र-निर्माण में जनजातीय समाज के योगदान से भावी पीढ़ियों को अवगत कराने के उद्देश्य से अन्य राज्यों में भी जनजातीय संग्रहालय स्थापित किये गए हैं।

जनजातीय विरासत को अपने अंक में समेटे देश के अन्य संग्रहालय हैं—बिरसा मुंडा संग्रहालय (राँची), उड़ीसा राज्य जनजातीय संग्रहालय (भुवनेश्वर), अराकू जनजातीय संग्रहालय (आँध्र प्रदेश), डॉन बॉस्को सेंटर फॉर इंडिजीनस कल्चर्स (शिलाँग), जनजातीय संग्रहालय (मैसूर), शहीद वीर नारायण सिंह स्मारक (रायपुर), जनजातीय संग्रहालय (राजपीपला) और रानी दुर्गावती संग्रहालय (जबलपुर) आदि।

संग्रहालयों के शहर के नाम से विख्यात भोपाल में स्थित 'माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान' एक ऐसा संग्रहालय है, जो न केवल अनूठा है, वरन देश में अपनी तरह का इकलौता भी है। संग्रहालय में लगभग पाँच करोड़ पृष्ठों की दुर्लभ और महत्वपूर्ण संदर्भ-सामग्री, लगभग पौने दो लाख संदर्भ ग्रंथ, 26,000 से अधिक शीर्षक समाचार पत्र और पत्रिकाएँ, 5,000 हस्तलिखित पांडुलिपियाँ और पोथियाँ, लगभग 5,000 संदर्भ फाइलें, साहित्यकारों, पत्रकारों और विशिष्ट व्यक्तियों के 10,000 से

अधिक पत्र और 200 से अधिक ऐतिहासिक महत्व के रेडियो, ग्रामोफोन, कैमरे, टेप रिकॉर्डर, टाइपराइटर आदि संगृहीत हैं। पिछले चार दशकों में लगभग 1,300 शोधार्थी संग्रहालय की संदर्भ-सामग्री

का उपयोग कर पी-एच.डी./डी-लिट. की उपाधियाँ अर्जित कर चुके हैं। देश के अलावा, लगभग 20 अन्य देशों के हजारों जिज्ञासु अब तक सप्रे संग्रहालय में संगृहीत ज्ञान-संपदा का अवलोकन कर चुके हैं।

भारत की लगभग सभी भाषाओं की ज्ञान-संपदा अपने अंक में सहेजे सप्रे संग्रहालय को देश के प्रबुद्ध जनों ने 'ज्ञान तीर्थ' की संज्ञा दी है, जो विरासत के संरक्षण और संवर्धन के क्षेत्र में इसके महत्व और योगदान को देखते हुए एकदम सटीक विशेषण है।

संग्रहालय की स्थापना ही नहीं, इसका संचालन भी विशिष्ट कौशल की माँग करता है। इसके लिए 1952 में पहल की गई, जिसके तहत देश में पहली बार एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा में संग्रहालय प्रबंधन का द्विवर्षीय पाठ्यक्रम प्रारंभ किया गया था। आज देश के अनेक विश्वविद्यालयों में संग्रहालय प्रबंधन की शिक्षा प्रदान की जा रही है।

संग्रहालय मनुष्य के भूत, वर्तमान और भविष्य के बीच संदर्भ-सेतु की भूमिका निभाते हैं। यह हमारा परिचय अतीत से कराते

हैं, जिससे हमें ज्ञान प्राप्त होता है और सबक भी मिलता है। अतीत से प्राप्त ज्ञान और सबक हमारे भविष्य के मार्ग को प्रशस्त करते हैं। इस दृष्टि से संग्रहालय महज पर्यटन केंद्र ही नहीं, चिरकालिक महत्व के संस्थान भी हैं।

अंतरराष्ट्रीय संग्रहालय परिषद् (आईकॉम) ने संग्रहालय को कुछ इस तरह से परिभाषित किया है—'संग्रहालय लाभ-हानि के सोच से परे समाज की सेवा में संलग्न स्थायी संस्थान होते हैं। यह समाज के विकास के लिए कार्य करते हैं। संग्रहालय मानव और उनके पर्यावास के साक्ष्य, विविध सामग्री का संकलन, संग्रहण और संरक्षण करते हैं। उन्हें प्रदर्शित करते हैं, शोध अनुसंधान में सहायक बनते हैं; अध्ययन, शिक्षा और मनोरंजन का उद्देश्य पूरा करते हैं।'

आईकॉम ने मानव-जीवन में संग्रहालयों के महत्व और उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए ही 18 मई को 'विश्व संग्रहालय दिवस' के रूप में मान्य किया है। संग्रहालय दिवस मनाने का यह सिलसिला 1977 में प्रारंभ हुआ और आज विश्व के लगभग सभी देश संग्रहालय के प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रदर्शित करने के लिए इस दिन विविध गतिविधियाँ आयोजित करते हैं।

भारत में भी संग्रहालयों की स्थापना से लेकर उनके संचालन तक की स्थितियों में उत्तरोत्तर प्रगति हुई है, लेकिन सामाजिक सहभागिता उस स्तर तक नहीं पहुँची है, जैसी पश्चिमी देशों में दिखाई देती है। भारत में आज भी संग्रहालय की स्थापना और उनका संचालन करना मुख्यतः सरकार की ही जवाबदारी समझी जाती है। निजी क्षेत्र अथवा न्यासों द्वारा संचालित संग्रहालयों की संख्या अपेक्षाकृत कम है।

निःसंदेह, भारत के कुछ निजी और सार्वजनिक संग्रहालयों ने अपने स्थापत्य, जीवंत प्रादर्शों और उत्कृष्ट दुर्लभ कलाकृतियों के लिए विश्वव्यापी ख्याति अर्जित की है, लेकिन इस क्षेत्र में मौजूद अपार संभावनाओं और क्षमताओं के दोहन के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

इन संभावनाओं को साकार स्वरूप प्रदान करना केवल सरकार की ही नही, समाज की भी जिम्मेदारी है, क्योंकि संग्रहालय अंततः समाज की ही थाती हैं। इस नाते संग्रहालयों की स्थापना, संरक्षण और संवर्धन में नागरिकों की सक्रिय भूमिका न केवल अपेक्षित है, वरन अपरिहार्य भी है।

संस्कृति के साझा सरोकारों में बसी जीवन-सुगंध

संस्कृति जीवन-छंद है। हजारों-हजार वर्ष लग जाते हैं, तब कहीं जाकर कोई संस्कृति निर्मित होती है। संस्कृति का अर्थ है, जीवन जीने का ढंग। मनुष्य जिस तरह से व्यवहार करता है, जो कुछ पहनता है, जिस तरह का भोजन करता है, रहता है, गाता-बजाता और नृत्य करता है—आदि सभी संस्कृति के ही उपादान हैं। यह सब एक दिन में कहाँ होता है! मनुष्य

डॉ. राजेश कुमार व्यास

देश के जाने-माने संस्कृतिकर्मी, कवि, निबंधकार, कला आलोचक और यात्रावृत्तांतकार।

प्रकाशन : 'नर्मदे हर', 'कश्मीर से कन्याकुमारी', 'आँख भर उमंग' (यात्रा-वृत्तांत); कलाओं पर 'कलाओं की अंतर्दृष्टि', 'कला-मन', 'रस निरंजन', साहित्य अकादेमी द्वारा 'कविता देती है दृष्टि' आदि समेत 27 मौलिक पुस्तकें प्रकाशित। केंद्रीय ललित कला अकादेमी की पत्रिका 'समकालीन कला' का अतिथि संपादन एवं राजस्थान सरकार की मासिक पत्रिका 'सुजस' का भी संपादन।

सम्मान : साहित्य अकादेमी पुरस्कार, कोमल कोठारी पुरस्कार, अखिल भारतीय रामचंद्र शुक्ल आलोचना पुरस्कार, शिखर सम्मान, राहुल सांकृत्यायन अवार्ड, पत्रकारिता का विशिष्ट माणक अलंकरण आदि।

संप्रति : अतिरिक्त निदेशक, माननीय राज्यपाल, राजस्थान।

संपर्क : मोबाइल— 9461500204

अपने आचरण से निरंतर सीखता है। जो कुछ अपनाता है, उसमें उत्कृष्ट की ओर आगे बढ़ता है। उसे जिसमें सुधार, परिष्करण नजर आता है, उसे अपनाते हुए वह जीवन जीने का अपना एक ढंग निर्धारित करता चला जाता है। पुरखों से प्राप्त ज्ञान के सहारे वह इसमें बढ़त करता है। यही बाद में किसी समुदाय की संस्कृति बन जाती है। इसलिए संस्कृति समाज में गहरे तक व्याप्त गुण है।

संस्कृति का अर्थ है—सुधरा हुआ, परिष्कृत। संस्कृति स्वभाव है और कलाएँ उसकी अभिव्यक्ति। कई बार यह भ्रम होता है कि संगीत, नृत्य, नाट्य, चित्र, वास्तु आदि संस्कृति हैं। यह सब संस्कृति नहीं हैं, उसकी अभिव्यक्ति का एक अंग मात्र हैं। पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' में 'संस्कृति' शब्द की व्युत्पत्ति 'संस्कार' से मानी गई है। इसलिए संस्कृति की जब हम बात करते हैं तो जन्म से मृत्युपर्यंत के मनुष्य के संस्कारों की ओर भी झाँकना होगा। एक बात और है—संस्कृति मनुष्य की ही होती है, दूसरे प्राणियों की नहीं। चूँकि मानव-मन को ही परिवेश की सर्वाधिक समझ होती है, वह सब पुरातन से नवीन होता जाता है। जो कुछ सुविधाजनक नहीं लगा, जिसमें सुधार की थोड़ी भी संभावना है, वह उसे अपने अनुकूल बना लेता है। सुधार लेता है। जो त्याज्य होता है, उसे छोड़ता जाता है। इसी से जीवन सलीके में ढलता जाता है। दूसरे प्राणियों में यह संभव नहीं होता है। टी.एस. इलियट ने अपने निबंध 'नोट्स टुवर्ड्स द डेफिनेशन ऑफ कल्चर' में संस्कृति को सलीके से जीवन जीने का तरीका ही बताया है। कोई एक व्यक्ति संस्कृति से जुड़े सभी गुणों को हासिल नहीं कर सकता। संस्कृति किसी समूह या समाज का ही गुण हो सकती है। नृशास्त्री वैज्ञानिक अध्ययन के अपने निष्कर्ष में संस्कृति को मनुष्य के उन तमाम व्यवहारों एवं उपलब्धियों से जोड़ते रहे हैं, जो मानव-समूह का सदस्य होने के नाते उन्हें उपलब्ध होते हैं। माने, संस्कृति मनुष्य की जातीय परंपरा में निहित है। यही मनुष्य का

वह विशिष्ट गुण है, जो उसे दूसरे प्राणियों से अलग करता है। संस्कृति न तो भौगोलिक सीमा-बंधनों को महत्व देती है, न राजनीति को ही। संस्कृति अखिल मानवता की सम्मिलित पूँजी है।

संस्कृति की इसी दृष्टि के आलोक में, संभवतः, विश्वभर की विविध संस्कृतियों, ऐतिहासिक विरासत, कला और परंपराओं के संरक्षण और उनके प्रति जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष 19 जून को 'विश्व एथनिक दिवस' मनाने की पहल हुई। दिवस का उद्देश्य है, लोगों को अपनी जड़ों से जोड़ने और जातीय समझ को बढ़ावा देने और संरक्षण के लिए कार्य करना। भारतीय संदर्भ में कहूँ तो मूलतः यह संस्कृति से ही जुड़ा शब्द है। अपनी जड़ों से जुड़े रहकर निरंतर अपने आपको परिष्कृत करने की दृष्टि है।

असल में, संस्कृति और परंपराएँ ही मनुष्य को जड़त्व से मुक्त करती हैं। यांत्रिक होने से बचाती हैं। उसे जीवंत बनाए रखती हैं। परस्पर विश्व-समुदाय जब एक-दूसरे की संस्कृति से साझा होता है तो भाषा, पूर्वजों के संस्कार, धर्म, इतिहास और सामाजिक व्यवहार के स्तर पर जो कुछ उत्कृष्ट है, उसका लाभ किसी एक को नहीं, सबको मिलता है। इसलिए, कि मनुष्य को सभ्य से और सभ्य बनाने में संस्कृति ही कारण बनती है। यही मनुष्य को उदात्त बनाती है। इसीलिए हमारे यहाँ तो यह भी कहा गया है कि संस्कारविहीन संस्कृति का नाम ही विकृति है।

मुझे लगता है, विश्व 'एथनिक' दिवस को लोक से जोड़कर देखेंगे तो उसके गहरे निहितार्थ में जा पाएँगे। लोक, माने यह संपूर्ण संसार। विलियम शेक्सपियर के नाटक 'ऐज़ यू लाइक इट' में डायलॉग है, 'सारी दुनिया एक रंगमंच है, और सभी पुरुष और महिलाएँ केवल कलाकार हैं।' इस विचार के अनुसार, जीवन एक नाटक ही है, जहाँ हम अपने प्रवेश यानी जन्म और निकास अर्थात मृत्यु के मध्य विभिन्न भूमिकाएँ निभाते हैं। इसी आलोक में, भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' की अभिनव की लिखी टीका में नाटक को लोक का 'अनुकरण' नहीं, 'अनुकीर्तन' कहा गया है। यह जो शब्द प्रयुक्त किया है, बहुत महत्वपूर्ण है। संस्कृतियाँ जब परस्पर मिलती हैं, उनमें आदान-प्रदान होता है तो हू-ब-हू एक-दूसरे की नकल नहीं होती है। वहाँ अनुकरण नहीं होता। अनुकीर्तन होता है। माने, उसका कथन। उसकी व्याख्या। एक संस्कृति की जो अच्छी व्याख्या है, कथन है और जो लुभाता है, जिसमें उत्कृष्ट निहित है—संवेदनाओं के संग, उसे दूसरी संस्कृति भी अपना लेती है। लोक से जुड़ी विश्व-संस्कृति युगीन संदर्भों में हमें नई परंपराएँ सौंपती है। परंपरा का अर्थ जड़ होना नहीं है। परंपरा का अर्थ है जीवन की जीवंत विरासत को पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित करना और समय के साथ प्रासंगिक बने रहना। परंपरा असल में निरंतर बहने वाली शृंखला है। यह मनुष्य के सांस्कृतिक मूल्यों, ज्ञान और रीति-रिवाजों को सँजोकर रखती है। यह रूढ़िवादिता नहीं, बल्कि समय के अनुसार बदलने की क्षमता रखने के मनुष्य के गुण से संबद्ध है।

संस्कृति, असल में, कलाओं के जरिए जीवन की गत्यात्मकता है। कहीं थम गए तो समझ लीजिए मानव-मन के सृजन के रास्ते भी बंद हो जाएँगे। हम कहते हैं, 'भगवा संस्कृति'। यह शब्द आया कहाँ से? असल में, समर्थ रामदास जी शिवाजी के गुरु थे। उनके मार्गदर्शन से ही उन्होंने विशाल राज्य खड़ा किया और एक दिन समर्थ गुरु के चरणों में उसे अर्पित कर दिया। गुरु जी ने भेंट को स्वीकार किया और कहा कि अब मैं इसे तुम्हें सौंपता हूँ, तुम इसकी रक्षा करते हुए शासन करो। गुरु की भेंट समझते ही शिवाजी ने राज्य पर भगवा ध्वज फहराया और मुगलों को कई बार शिकस्त दी। इस प्रकार 'भगवा संस्कृति' शब्द बन गया।

संस्कृति की सार्थकता ही इसमें है कि वह पुराना जो कुछ अच्छा है, उसे अपनाते हुए निरंतर आगे बढ़े। हम आज भी रात्रि को फूल-पत्तियाँ नहीं तोड़ते, इसलिए कि पेड़ भी तब सोया हुआ होता है। किसी ने समझाया नहीं, पर यह स्वभाव में आ गया। संस्कृति बन गया। उत्सव, पर्व, त्योहार पर मन मुदित हो गाता-झूमता है, मांडणे, अल्पना आदि उकेरता है। विवाह होता है तो मेहँदी सजती है, दिवाली के दूसरे दिन गोबर से गोवर्धन जी की मूरत बना उसकी पूजा की जाती है। यह कलाएँ आईं कहाँ से? जीवन में घुले स्वभाव से। पुराना हमारा जो अच्छा है, उसे नया जीवन देने की दृष्टि। इसी तरह संस्कृति हमें देती है। संस्कृति को अप-संस्कृति होने से बचाती है। भोगवाद की बजाय श्रम से उपजा नाच-गान जब कहीं होगा तभी संस्कृति जीवंत रहती है, जीवाश्म नहीं बनेगी।

राजस्थान में कभी दूर तक पसरे रेगिस्तान में लू और आँधियाँ चलती थीं। पानी की एक-एक बूँद के लिए आदमी तरसता था। अभाव-ही-अभाव थे, परंतु उन अभावों को जीवन से जुड़े संस्कारों ने चटख रंगों की चूंदड़ी में, रंग-बिरंगी पाग और उत्सवधर्मी संस्कृति ने भाव भर दिए। कला-रूपों में 'कुछ नहीं' में 'सब कुछ' होने की संभावना तलाश ली गई। सात वार-नौ त्यौहार वाला प्रदेश बन गया, राजस्थान।

संस्कृति की यही सुगंध है। अभाव में भाव-संपन्नता। अभावों का रोना नहीं है, उससे जूझते हुए जीवन को उल्लसित भावों से जीने

की सीख संस्कृति देती रही है। ऐसा नहीं है कि अब अभाव नहीं रहे, अब अत्यधिक विकास से उपजी यांत्रिकता है, पर्यावरण प्रदूषित है, पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ने से उभरा जलवायु संकट है, पर इनसे उबरने की शक्ति संस्कृति की वह छटाएँ हैं, जिनमें तालाब खोद वर्षा जल संरक्षण हुआ, जिनमें जीव-जंतुओं के प्रति करुणा रखते हुए उन्हें अन्न-जल देने की परंपराएँ बनीं, जिनमें पेड़ नहीं काटने के लिए खेजड़ली जैसे बलिदान हुए, ओरण रखे जाने; गोचर भूमि के लिए स्थान रखा गया।

इस समय का बड़ा संकट यह भी है कि हमने अप-संस्कृति, विसंस्कृति, सांस्कृतिक प्रदूषण आदि बहुतेरे शब्दों के घटाटोप में सूचनाओं को ही संस्कृति मानना प्रारंभ कर दिया है। सूचना संस्कृति नहीं है। संस्कृति व्यक्ति का जैविक गुण है। जैविक गुण जीव की आनुवंशिकी प्रतिक्रिया है। हम किसी मंदिर, मजार को देखते हैं तो अपने आप सिर झुक जाता है। अपने से बड़े-बुजुर्ग को देखते हैं तो उनके सम्मान में अभिवादन हो जाता है। यह शिष्टाचार कहाँ से आया? संस्कृति से ही तो! यंत्रवत ऐसा होता है। परंतु संस्कृति की यह सीख एक दिन में नहीं आती, बरसों-बरस की एक लंबी प्रक्रिया से यह सब समझ बनती है। हमारा यह संस्कार समाजगत है। जैसा देखते रहे हैं, वैसा हमने आत्मसात कर लिया। जरूरी नहीं है, सभी ऐसा करते हैं, परंतु अधिसंख्य बिना प्रयास के स्वतः ऐसा व्यवहार करते हैं। अधिसंख्य से ही संस्कृति की पहचान होती है। इसीलिए संस्कृति समूहगत गुण है।

कोई समुदाय संस्कृतिविहीन नहीं हो सकता। इसलिए कि उसे जीवित रहने के लिए भोजन, वस्त्र, आवास आदि सब चाहिए होता है। संवाद के लिए भाषा और संकेतों की आवश्यकता होती है। इसीलिए संस्कृति को बहुतेरी बार संगीत, नृत्य, नाट्य और दूसरी कलाओं से जोड़कर अधिक देखा जाता है। इसलिए कि मनुष्य जो जीवन जीता है, जिस तरह से रहता है वही संस्कृति है और उसकी अभिव्यक्ति कलाएँ हैं। अभिव्यक्ति जीवन जीने के ढंग को रूपायित करती है, इसलिए हम मनुष्य की प्रतीकधर्मी अभिव्यक्ति संगीत, नृत्य, नाट्य आदि कलाओं से उसके होने का आकलन करते हैं। हालाँकि यह सही है, यह सारी अभिव्यक्ति मनुष्य के उस स्वभाव से ही सृजित होती है जो उसका बरसों की सहेजी परंपरा से बनता है। इसलिए नृत्य, संगीत, भाषा और साहित्य मनुष्य की विशिष्ट संस्कृति की भूमिका का निर्धारण करते हैं और इसीलिए इन्हें ही प्रायः संस्कृति समझ लिया जाता है, जबकि संस्कृति की भूमिका इससे कहीं अधिक व्यापक है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के इस दौर में मशीन मनुष्य जैसा ही व्यवहार करने लगी है, जो कुछ मनुष्य करता है, वही मशीन से करना संभव हो गया है। इसलिए यह भ्रम भी बनने लगा है कि आने वाले समय में मशीन मनुष्य का स्थान ले लेगी। मशीन का गठन मनुष्य जैसा हो सकता है। कृत्रिम बुद्धिमता यह भ्रम उपजाने में सक्षम है, परंतु मशीन सूचनाओं पर आश्रित है। वह स्वयमेव अपनी संस्कृति का निर्माण नहीं कर सकती। संस्कृति प्रकृति से जुड़े परिवेश से पोषित होती है। मनुष्य प्रकृति से ही प्रेरणा लेता है। वहीं से पोषित होता है। इसीलिए वहाँ जड़त्व नहीं होता। प्रकृति पल-पल बदलती रहती है। नित्य नए रूप स्वयंमेव धारण करती है। इसी आलोक में मनुष्य भी अपने आपको बदलता रहता है। कृत्रिम बुद्धिमता में यह संभव नहीं है। यह ठीक है, वहाँ पर बहुत सारा स्वयमेव सेंसर से हो सकता है, पर प्रकृति और परिवेश का संतुलन बिगड़ते ही, सूचनाओं के स्रोत सूखते ही वहाँ जड़त्व हो जाता है। एकरसता पसर जाती है। मनुष्य और मशीन में यही फर्क है। मनुष्य अप्रत्याशित और पूर्व निर्धारित नहीं होने पर भी अपने आपको उसके अनुसार ढाल लेता है। उसके अनुरूप अपने आपको व्यक्त करता है, इसीलिए उससे जुड़ी संस्कृति जड़ नहीं होती, जीवाश्म नहीं बनती।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता में या अन्य ऐसे ही मनुष्य जैसे संरचनात्मक गठन में सूचना स्रोत महत्वपूर्ण होते हैं। सूचनाएँ उनका पोषण करती हैं। उनके आधार पर वहाँ बुद्धिमत्ता का उत्कृष्ट प्रदर्शन होगा। कोई मनुष्य सूचनाएँ देगा तभी वहाँ परिणाम आएगा, पर मनुष्य चेतन-अचेतन से, प्रकृति से ही निरंतर संकेत लेकर आगे बढ़ता है। यह जो गुण है वही संस्कृति है। मनुष्यता की बढ़त है। मनुष्य की संस्कृति इसीलिए चैतन्य अवस्था से जुड़ा गुण है। इस चैतन्य अवस्था के गुण से ही तो मनुष्य आनुवंशिकी से प्राप्त अपनी सहज प्रवृत्ति से पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीन संरक्षण, पुरखों की विरासत से जुड़ी सोच से जुड़, अमरत्व की तलाश की ओर आगे बढ़ रहा है। पर, संस्कृति की यह केवल वैज्ञानिक दृष्टि ही नहीं है। संस्कृति चूँकि परिष्करण से जुड़ी दृष्टि है इसलिए यहाँ अमरत्व की तलाश का अर्थ है, हम जीवन के उदात्त अर्थ को स्वीकार करते आगे बढ़ें। जो थोड़ा भी अंधकार है, उससे मुक्ति की राह निरंतर मिलती रहे। 'बृहदारण्यक' उपनिषद का एक प्रसिद्ध शांति मंत्र इसी से जुड़ा है। मंत्र है—'असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय।' माने, हे ईश्वर हमें असत्य से सत्य की ओर ले चलो। अज्ञानता के अंधकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।

भारतीय संस्कृति उदात्त जीवन-मूल्यों से जुड़कर ही विश्वजनीन हुई है। इसलिए कि हमने जो भी, जहाँ से अच्छा मिला उसे अपना लिया। संस्कृति का यही सहज गुण है। जिसमें यह गुण नहीं है, अपने और केवल अपने मूल्यों पर ही आस्था है—वह कट्टरता की ओर अग्रसर होकर जड़त्व का शिकार हो जाता है। कट्टरता का एक अर्थ अज्ञान ही है। अज्ञान जीव को आगे बढ़ने से रोकता है। संस्कृति की बहुलता व्यक्ति को विकास की ओर अग्रसर करती है। उसके अपने आबद्ध घेरों से मुक्त करती है।

असल में, मनुष्य की संस्कृति उस विशेष समूह या समूहों से जुड़ी होती है, जिसमें वह पला-बढ़ा होता है। परिवार, परिवेश, राज्य, राष्ट्र आदि से मनुष्य को भावनात्मक लगाव हो जाता है। यही मनुष्य के अपने घेरे हैं। इसमें वह आबद्ध होता है। इसी से जीवन की एक परिपाटी बन जाती है। यह परिपाटी पीढ़ी-दर-पीढ़ी समुदाय में जीवित रहती है, पर इस परिपाटी में बदलाव के कारक भी परिवेश के दबाव होते हैं। आधुनिक अर्थ में कहें तो यह दबाव विश्व को 'एक गाँव' ग्लोबल विलेज बनाने की वह दृष्टि है, जिसमें विविधता को समाप्त कर एक जैसे ही बनने की दिशा में कार्य हो रहा है। मशीनजनित तकनीकी या कहें कृत्रिम बुद्धिमत्ता इसी दिशा में कार्य कर रही हैं। भाषाओं को नष्ट कर एक भाषा, एक तरह की वेशभूषा, एक तरह का खान-पान और एक ही तरह की सोचने की दृष्टि का भाव भले ही ऊपरी तौर पर हमें ठीक लगे। समानता का बोध कराए, परंतु यह व्यक्ति को सीमित दायरा देती है। उसके दृष्टि-पथ को बाधित कर वैविध्यता की सुगंध से वंचित करती है। कालांतर में, यह भाव एकात्म सत्ता के रूप में विनाशकारी भी सिद्ध हो सकता है। इसमें जातीय संस्कारों, बरसों-बरस से चली आ रही उन प्रथाओं का क्या होगा, जिसने मनुष्य में मनुष्य होने के भाव को बचाए रखा है! जीवन में प्रकृतिजन्य सहज प्रवृत्ति का विस्तार जब नहीं होगा तो संस्कृति अप-संस्कृति में परिणत होगी। इसी से एकरसता पसरेगी। जीवन यांत्रिक होता चला जाएगा। सीमाहीन अहं और उन्माद आदमी को तब निर्वैयक्तिक सर्वनाश के लिए भी प्रेरित करेगा। जिसके पास शक्ति होगी, वही सत्ता में सदा-सर्वदा कायम रहने की सोच से जुड़ेगा।

संस्कृति कोई भी बुरी नहीं होती, यदि वह धीरे-धीरे दूसरी संस्कृति में अनायास समाती है। यदि कहीं किसी परंपरा को, अपनी संस्कृति को अपरोक्ष भी जबरदस्ती अपनाने के आग्रह निहित होंगे तो उसके परिणाम भी घातक ही होंगे। असल में, वह भी संस्कृति नहीं, अप-संस्कृति ही कही जाएगी। संस्कृति को जब समूहगत संस्कार कहा जाता है तो उसमें निहित यह भी है कि वह 'मनुर्भव' के आलोक से जुड़ी होती है। उसकी पहली शर्त होती है—मनुष्य बनें। मनुष्य बनने का अर्थ है, अपनी निजता का सम्मान करने के साथ-साथ दूसरे की भी निजता को हम सम्मान दें। दूसरे की दुर्बलता के चलते उसे हड़पने की सोच नहीं रखें, बल्कि अपनी शक्ति से उसमें सबलता भरने का प्रयास करें। यही संस्कृति है। इसीलिए तो संस्कृति को मनुष्य मात्र का गुण कहा गया है। दूसरे प्राणियों में यह नहीं होती, इसलिए कि वहाँ अपने और केवल अपने होने का स्वार्थ भाव बना होता है।

संस्कृति बाहरी प्रभावों को स्वीकारती है। दूसरे देशों को कुछ अपना देती है, कुछ लेती है। पर यह प्रभाव औचक नहीं होता, बल्कि धीरे-धीरे। कुछ इस तरह से कि जो अनुकूल है वह लंबी अवधि में मिट्टी-पानी में सनकर खाद की तरह पोषण करे। संस्कृति की बहुलता में मनुष्यता का अन्वेषण इसीलिए होता है कि वहाँ पर एक-दूसरे को मिटाने की नहीं, एक-दूसरे को पोषित कर आगे बढ़ाने, वृद्धि की सोच निहित होती है। इसी से जीवन की लय जुड़ी हुई है। यह लय जुड़ी रहती है तभी जीवन में सुगंध घुली रहती है।

सांस्कृतिक परंपराएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होकर मनुष्यता को बचाए रखती है। इसीलिए विभिन्न राष्ट्रों का सांस्कृतिक विकास वहाँ की कथाओं, मिथकों, भाषाओं के विकास, वहाँ के प्रतीक चिह्नों, कलाकृतियों आदि के रूप में देखा जाता है। यह इसलिए है कि सांस्कृतिक विकास का आधार इन्हीं सबका संप्रेषण है। यही वह सब कुछ तो है, जो मनुष्य को दूसरे प्राणियों से अलग करता है। भाषा का विकास कब हुआ, कहा नहीं जा सकता, परंतु सहज प्रकृति के बंधन से संस्कृति के दायरे में मनुष्य के प्रवेश की दिशा में उसकी बड़ी छलाँग यही है। इसलिए भाषाओं की विविधता मनुष्य की बड़ी धरोहर है। भाषाएँ बची रहने का अर्थ है, मनुष्य का अस्तित्व बचा रहना।

संस्कृति जीवन नहीं है, सृजन से जुड़ी ऊर्जा है। अवधारणाओं के आधार पर, कल्पनाओं के सहारे मनचाहे सृजन और उसके संप्रेषण की दृष्टि से संस्कृति बढ़त करती है। संस्कृति असंभव को संभव कराने की गति है। अन्य जीवों में इसीलिए यह नहीं होती। इसीलिए वहाँ असंभव नहीं होता। मनुष्य ही है, जो असंभव करने की क्षमता रखता है। वह कृत्रिम बुद्धिमत्ता के जरिए मनुष्य जैसा ही मनुष्य गढ़ने की अपार शक्ति रखता है। दूसरे प्राणी ऐसा नहीं कर सकते। इसलिए कि मनुष्य प्रकृति से सीखता है। प्रकृति के घुले संस्कारों में रच-बसकर वह कलात्मक रूप गढ़ता है। इससे वह स्वयं उल्लसित रहता है और दूसरों को भी यांत्रिकता से मुक्त हो प्रसन्न रहने के सूत्र देता है। वह भाषा की भाँति-भाँति की छटाओं में इस तरह का साहित्य गढ़ता है, जिसमें वास्तविक संसार को जैसा होना चाहिए—वैसा बनाता चला जाता है। मनुष्य ही है, जो कल्पना के सहारे, दूसरी संस्कृतियों से ग्रहण करने के बूते, जो वस्तुएँ संसार में प्रत्यक्ष नहीं हैं उन्हें जीवंत कर देता है। उन स्थितियों को भी सृजित कर देता है, जिनका वास्तविकता से कोई नाता नहीं होता, परंतु उसके वह विश्वजनीन विवरण सौंप सकता है। विश्वभर की श्रेष्ठतम लिखी कहानियाँ, नाटक, कविताएँ इसका प्रमाण है।

यह मनुष्य की संस्कृति ही है, जिसने प्रकृति को समझने और समझाने के लिए मिथकों का निर्माण किया। नदी, वृक्ष, पर्वत, मनचाही धरती और उन्हें सोते-जागते देखना संभव करने का कार्य मनुष्य की उस वैश्विक संस्कृति ने ही किया, जिसमें एक-दूसरे से सीखते हुए वह आगे बढ़ा है। यह संस्कृति का उद्यम है कि जहाँ जो वस्तु नहीं होती, पेड़-वनस्पति नहीं होती, उसे वहाँ उगाकर, उपलब्ध कराकर अपूर्व किया गया है।

संस्कृति माने अंतर का अन्वेषण। विकास का आधार संस्कृति ही है। संस्कृति न हो तो विकास भी थम जाए। यह संस्कृति ही है, जिससे मनुष्य आदिम शक्तियों के दौर में प्रवेश कर अंधविश्वासों

और रूढ़ियों से मुक्त हुआ है। संस्कृति से प्रकृति को संतुलित करने की सीख मनुष्य को मिली, पर प्रकृति पर नियंत्रण संस्कृति नहीं है। यह विकृति है। इसीलिए जब-जब ऐसा हुआ है उसके दुष्परिणाम सामने आए हैं। प्रकृति से एकमेक होकर रहने, उसे संतुलित रखने और उससे सीखते हुए आगे बढ़ने की दृष्टि संस्कृति है। इसी से मनुष्य ने अपने आपको पहचाना है। अपने भीतर की शक्तियों को जाना है, पर शक्ति से साम्राज्य की ओर जब-जब वह बढ़ा है जड़त्व का शिकार हुआ है। उसका अधोपतन हुआ है। संस्कृति अंतर की खोज है, यह जितनी घनी होगी उतना ही मनुष्य आगे से आगे बढ़ता जाता है। संस्कृतिजन्य कौशल एक-दूसरे की स्वीकार्यता है। इसी से समाज का ताना-बाना बचा रहा है। बचा रहेगा।

प्रकृति है तो मनुष्य है। इसका संतुलन बना रहना चाहिए। इसीलिए हमारे यहाँ पंचभूत तत्वों का महत्व है। गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में 'छिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित अति अधम सरीरा' के माध्यम से यह बताया है कि यह नश्वर शरीर और प्रकृति पाँच तत्वों—पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु से बने हैं। यह पाँच तत्व ही जीवन की स्थिरता, तरलता, ऊर्जा, आकाश और गति बनाए रखने का आधार हैं। इसलिए भारतीय संस्कृति में प्रकृति पर नियंत्रण की नहीं, उसके पूजन की परंपराएँ बनीं। पेड़-पौधों को पूजने, नदी-जल की परिक्रमा करने, अग्नि से यज्ञ कर उससे संपूर्ण सृष्टि के

कल्याण की कामना करने आदि को आस्था और जीवन जीने के ढंग से जोड़ा गया। प्रकृति और जीव-जंतुओं के प्रति प्यार, सद्भाव और आदर का भाव ही तो है कि देवी-देवताओं के वाहनों के रूप में उन्हें स्वीकारते उनकी भी पूजा करने की दृष्टि हमने सँजोई है। संस्कृति की यह पारिस्थितिकी संतुलन से जुड़ी वैज्ञानिक दृष्टि है, जिसमें एक-दूसरे की धरती पर परस्पर निर्भरता के आलोक में जीवन की जीवंतता के आख्यान रचे गए हैं। प्रकृति मनुष्य की सोच का खाद-पानी है इसलिए उससे नाता बचा रहेगा, उसके संतुलन की दृष्टि जब तक बनी रहेगी तभी तक संस्कृति अप-संस्कृति होने से बची रहेगी।

संस्कृति मनुष्य की रचनात्मक ऊर्जा है। वह प्रकृति और परिवेश से पोषित होती है, पर यह परिवेश प्रकृतिजन्य स्थितियों से कटेगा तो रचनात्मक दृष्टि गौण होगी। कालांतर में संघर्ष की स्थितियाँ बनेंगी। स्वयं मनुष्य के अस्तित्व को भी इससे खतरा होगा। सशक्त सांस्कृतिक परंपराएँ चाहे किसी भी देश की हो, जीवन को व्यवस्थित और आलोकित करती है।

नये सांस्कृतिक प्रभाव स्वाभाविक हैं, पर आँख बंद कर उन्हें नयेपन के रूप में या आधुनिकता के नाम पर स्वीकार करते हैं तो बिखराव की स्थितियाँ पैदा होंगी। बाजार नहीं चाहता कि विविधता बनी रहे। बाजार नहीं चाहता कि संस्कृति की बहुलता बनी रहे। बाजार नहीं चाहता कि मनुष्य विचार करने की दृष्टि से जुड़ा रहे। बाजार का अर्थ है, स्वार्थपरक सोच। इससे मुक्ति की राह भी 'मनुर्भव' ही है। हम मनुष्य बने रहें। अपने लिए ही नहीं, दूसरे के लिए भी सोचें। महात्मा गांधी का कहा याद आता है, "मैं यंत्रों का विरोधी नहीं, मैं तो उनके पागलपन का विरोधी हूँ। आज यंत्र के कारण व्यक्ति लाखों व्यक्तियों का मालिक बन जाता है। इसके पीछे मनुष्य का परिश्रम बचाने की मानवीय भावना नहीं, बल्कि मुनाफे का शुद्ध लोभ है।" कृत्रिम बुद्धिमत्ता इसी लोभ की परिणति है। वहाँ सूचनाओं का भंडार है। इस भंडार से सब कुछ त्वरित पाने की आकांक्षा निहित है। विचार की संस्कृति के लोप का भाव वहाँ अदृश्य रूप में छुपा हुआ है। इसका उपयोग मनुष्यता के भाव से होता है तब तो ठीक है, परंतु यह कोरे स्वार्थ, लोभ के लिए ही होता है तो संकट मनुष्यता के अस्तित्व का भी खड़ा हो जाएगा। यह मनुष्य की संस्कृति नहीं है। संस्कृति जीवन जीने का परिष्कृत सुधरा हुआ रूप है। इसमें जड़त्व नहीं है। अपने साथ अपने सहयोगियों के भी विकास का भाव वहाँ निहित है। आस्था और आत्मविश्वास इसका बड़ा आधार है। संस्कृति बची रहेगी तो तकनीक से जुड़ी प्रगति और मनुष्य की नैतिक प्रगति के बीच संतुलन बना रहेगा। मानव-संस्कृति भौतिक नहीं, आत्मिक विकास के साथ सृजन की असीमित संभावनाओं का संधान है।

हम कितना बाहर से लें, कितना भीतर का बचाए रखें और कितना अपरिहार्य है उसे छोड़ दें—इसका बोध संस्कृति कराती है। इसीलिए संस्कृति परंपराओं में आबद्ध है। अतीत वहाँ प्रेरणा है। सर्वश्रेष्ठ साहित्य और कलाओं का पैमाना कोई देश या भूगोल नहीं है। संसार का सर्वश्रेष्ठ सदा ही स्थानीय रहा है, परंतु उसकी विशेषता ऐसी होती है कि वह अपने उस स्थानीय दायरे को लाँघकर दूसरे समूहों तक पहुँचा है। उसकी सुगंध ऐसी होती है कि वह स्वतः दूसरे समूहों तक पहुँच जाती है। जो अच्छा है, इसीलिए किसी एक का नहीं रहता—सार्वजनीन हो जाता है। यही संस्कृति की विशेषता है। वह परिवेशजनित होती है, परंतु उससे बँधी नहीं होती है। वह संसार के सभी परिवेशों को समझने, उससे नया कुछ लेने, परंतु इस लेने में संकीर्णता के पूर्वाग्रह से मुक्त होती है। इसीलिए कहूँ, संस्कृति का अर्थ है—उदात्त भाव। जहाँ से, जो अच्छा है, जिससे परिष्करण हो सके मुक्त मन से उसे स्वीकारें। संस्कृति जीवन की सुगंध है। यह जितनी बिखरेगी, मनुष्यता और यह जीवन बचा रहेगा।

पुस्तकें जिन्होंने मुझे लेखक बनाया

बचपन में मुझे लेखन के प्रतिकूल वातावरण भी मिला और अनुकूल भी। हमारा गाँव संचार और यातायात के साधनों से लगभग वंचित था। देश को स्वतंत्र हुए तीन-चार साल बीते थे। गाँवों का विकास शुरू ही हो रहा था। हमारे गाँव की साक्षरता-दर नगण्य थी। उस वातावरण में लेखक बनने की कोई प्रत्यक्ष प्रेरक स्थिति नहीं थी, लेकिन घर में पिता जी की अनेक पत्रिकाओं और पुस्तकों का होना, उनका स्वयं सुकवि होना प्रेरणा का एक पक्ष जरूर था। ग्रामीण संयुक्त परिवारों की परिपाटी के कारण पिता जी से यद्यपि मेरा बहुत अधिक संवाद नहीं था, उनके व्यस्त सामाजिक जीवन का कम समय ही हमारे हिस्से आता था। लेकिन जिन दिनों गाँव में पुस्तकों का अर्थ केवल स्कूल के बस्ते की किताबें होता था, ऐसे में उन्होंने हमें पाठ्यक्रम के अतिरिक्त पुस्तकों की बड़ी

राजेंद्र गौतम

जन्म : 06 सितंबर, 1952, ग्राम बराह कलाँ (हरियाणा)

कृति/प्रकाशन : छह कविता-संग्रह प्रकाशित, *काव्यास्वादन और साधारणीकरण, पंत का स्वच्छंदतावादी काव्य, दृष्टिपात, हिंदी नवगीत : उद्भव और विकास* (आलोचना) प्रकाशित।

सम्मान : हरियाणा गौरव पुरस्कार, लोकनायक जयप्रकाश नारायण पुरस्कार, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी निबंध पुरस्कार सहित कई सम्मान प्राप्त।

संपर्क : फोन– 9868140469

दुनिया से जोड़ा, जिससे 'साहित्य' की एक मूर्त-अमूर्त छवि बचपन में ही मेरे मन में बनने लगी थी। विद्यालयीय जीवन तक पुस्तकों से जुड़ने के तीन स्पष्ट सोपान मुझे स्मरण हैं, जिनमें पढ़ी गई पुस्तकों की प्रकृति का अंतर स्पष्ट है। गाँव के उस परिवेश में कुछ घटनाओं को मैं सुयोग ही मानता हूँ, जिनकी मेरे भावी जीवन के निर्माण में विशेष भूमिका रही। ये घटनाएँ हैं—पास के गाँव के मेले से पुस्तकें लाना, पिता जी द्वारा पंचायत के लघु पुस्तकालय का आरंभ और पिता जी का मुंबई से बहुत-सी पुस्तकें लाना।

हमारे गाँव से पाँच किलोमीटर दूर एक प्रसिद्ध पौराणिक तीर्थस्थल है—पांडु पिंडारा। वहाँ प्रति अमावस्या मेला लगता है। पिंडदान के कर्मकांड से जुड़ा होने के कारण यहाँ पर सोमवती अमावस्या पर बहुत भीड़ होती है। बचपन का वह दृश्य आँखों के आगे घूमता है, जब बच्चों और युवाओं में मेले में जाने का बहुत उत्साह होता था। हमारी कोशिश तो हर अमावस्या को जाने की रहती थी, लेकिन अकसर स्कूल की छुट्टी न होना एक बड़ी बाधा होती। कई बार मेले के उत्साह में स्कूल गोल कर देते थे। सोमवती अमावस्या को तो घर वालों और स्कूल की ओर से भी छूट मिल जाती थी। आस-पास के गाँव से ही नहीं, दूर-दूर से हजारों लोग पैदल, बैलगाड़ियों से या साइकिल से मेले में आया करते थे। उस सस्ते जमाने में जो रुपया या अठन्नी बच्चों को मेले के लिए मिलती थी, उसे खर्च करने के लिए बड़ा आकर्षण लाल-पीली डिबिया वाला चश्मा, कागज की फिरकनी, पीपनी जैसे खिलौने हुआ करते थे। ये चीजें मुझे भी आकर्षित करती थीं, लेकिन हमें एक और ठिकाना बुलाता था। तब तक न 'ईदगाह' पढ़ी थी, न हामिद से कोई परिचय था। चिमटा-विमटा खरीदने जैसा महान काम तब हमने नहीं किया। लेकिन मेले में लगने वाली एक दुकान 'गीता प्रेस गोरखपुर' हमारे आकर्षण का केंद्र जरूर थी। उनकी किताबें भी हमारी पहुँच के भीतर होती थीं। 15 पैसे में गीता का गुटका और 25-30 पैसे में

पौराणिक कहानियों की बहुत सारी किताबें उपलब्ध थीं। इस तरह, किताबों का एक बड़ा संचय हमारे पास हो गया। इनसे दो-तीन चीजें हमें प्राप्त हुईं। एक तो गति से पढ़ने की क्षमता का विकास हुआ, दूसरे बहुत-सी पौराणिक घटनाओं और पात्रों से हमारा परिचय हुआ। तब सभी पौराणिक वृत्तांत हमें इतिहास ही लगते थे। उपनिषदों की अनेक कथाएँ हमें याद हो गईं। इन किताबों ने मुझे रूढ़िवादी नहीं बनाया, बल्कि मैंने अच्छाई और बुराई के संग्राम में अच्छाई की विजय का एक आदर्श उनसे ग्रहण किया। उनसे प्राप्त कथा-रस सबसे महत्वपूर्ण था। किताबों की इस दुनिया ने धीरे-धीरे हममें वर्णन-कौशल को भी विकसित किया। पुस्तक-प्रेम का यह प्रथम सोपान था।

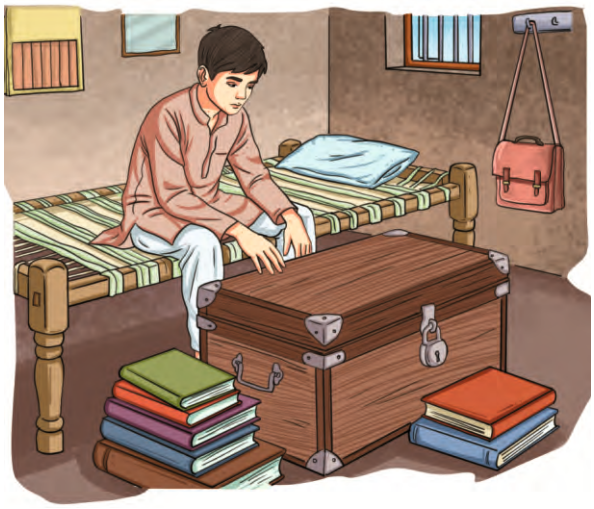

हरियाणा के गाँवों में उस समय पुस्तकालय की अवधारणा कल्पना से परे थी, लेकिन 1959 में जब पिता जी सरपंच बने तो उन्होंने सरकार से अनुदान प्राप्त कर पंचायत का पुस्तकालय आरंभ किया। पाठकों के बौद्धिक स्तर को ध्यान में रखते हुए सरल भाषा में कुछ शिक्षाप्रद उपन्यास और कहानियों की पुस्तकें खरीदी गईं। तब मैं प्राइमरी का विद्यार्थी था और लकड़ी के एक बक्से तक सीमित उस पुस्तकालय का अनौपचारिक प्रभारी भी। मैंने बक्से की सारी पुस्तकें पढ़ डाली थीं। पुस्तक-प्रेम का यह मेरा दूसरा सोपान था।

तीसरे सोपान में जिन पुस्तकों से मेरा परिचय हुआ, उनका प्रभाव मेरे जीवन पर सर्वाधिक रहा। उन्हीं ने मेरे मन में लेखक बनने की कल्पना का बीजारोपण किया, नये सपने बुनने की प्रेरणा दी। वह एक 'टर्निंग पॉइंट' था। 1966 में पिता जी के चले जाने के बाद उनका पुस्तक-संग्रह मेरे हवाले था। अब मैं नवीं कक्षा में आ गया था और साहित्यिक समझ कुछ बढ़ने लगी थी। उस संग्रह में हिंदी, अंग्रेजी, मराठी और संस्कृत की पुस्तकें थीं। संस्कृत की अधिकतर किताबों का विषय आयुर्वेद था। उन्हें मैंने 12वीं के बाद ही छुआ था। हिंदी की किताबें बाँचना मैंने बचपन में ही शुरू कर दिया था। साहित्य की रचनात्मक शक्ति जैसे मुझे आकर्षित कर रही थी। वह एक नई विशाल दुनिया थी। दसवीं तक आते-आते अंग्रेजी की किताबें भी पढ़नी शुरू कर दी थीं। हिंदी की ज्यादातर किताबें अनूदित थीं। दो-तीन वर्षों में मैंने संग्रह की सारी किताबें पढ़ डालीं, कुछ एक से अधिक बार भी पढ़ीं। इनकी स्मृति मेरे मन में स्थायी हो गई। कुछ किताबें निरंतर मेरा पीछा करती रहीं। वे थीं—'लोमहर्षिणी' (कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी), 'चंद्रगुप्त' (द्विजेंद्र लाल राय), 'पर्णा' (गोविंद बल्लभ पंत), 'मुद्राराक्षस' (राजा लक्ष्मण सिंह), 'नाना' (एमिल जोला), 'काला फूल' (एलेक्जेंडर डूमा), 'एक अनजान औरत का खत' और 'विराट' (स्टीफन ज़्विग)। ये सब हिंदी में थीं। 'गुड बाय मिस्टर चिप्स' (एच हिल्टन), 'एडवेंचर्स ऑफ रॉबिंसन क्रूसो' (डेनियल डेफो) और 'लेटर्स फ्रॉम ए फादर टू हिज डॉटर' (जवाहरलाल नेहरू) अंग्रेजी में थीं।

उन दिनों रामायण-महाभारत की कथाएँ तो गाँव में खूब प्रचलित थीं, रामलीला के प्रतिवर्ष मंचन से रामायण की कथा और उनके पात्रों से हम परिचित हो गए थे, लेकिन वैदिक कथाएँ हमारे लिए उतनी परिचित नहीं थीं। सातवीं-आठवीं कक्षा में 'लोमहर्षिणी' उपन्यास मेरे हाथ लगा। तब मैं न साहित्य का अर्थ समझता था और न उपन्यास का। बस, रोचक वर्णन से वशीभूत हो उसे पढ़ता चला गया। इसका कथा-संदर्भ दिवोदास, तृत्सु, विश्वामित्र, वसिष्ठ, अगस्त्य, लोपामुद्रा, अजीगर्त और शुनःशेप से जुड़ा था। उस आरण्यक परिवेश में तारों भरे आकाश के नीचे पणियों द्वारा परुष्णी नदियों में और उनके साथ की गई रहस्य-रोमांच भरी यात्राओं की धुँधली स्मृति अब तक मेरे अनुभव में गहरे बसी है, दृश्यों और घटनाओं की छाया अवचेतन में समायी हुई है। उपन्यास के आरंभ में राम (परशुराम) के गहन प्रशिक्षण प्राप्त करने और जीवन के संघर्ष के अनुकूल अपने को गढ़ने का वर्णन अभिभूतकारी था। मैं कल्पना किया करता था कि मैं भी ऐसा प्रशिक्षु बनूँ। इस उपन्यास में चित्रित वैदिक संसार मेरे लिए अविस्मरणीय है।

छठी कक्षा में मुझे नहीं पता था कि आगे चलकर मैं 'मुद्राराक्षस' और प्रसाद के 'चंद्रगुप्त' नाटक के माध्यम से चाणक्य और चंद्रगुप्त की कथा का नया परिचय प्राप्त करूँगा, लेकिन उन दिनों मुझे एक पतली-सी किताब मिली। वह थी, द्विजेंद्र लाल राय का नाटक 'चंद्रगुप्त'। बाद में जाना कि वे बाँग्ला के दिग्गज लेखक थे। उस समय तो नाटक की रोमांचक घटनाएँ ही आकर्षण का सबसे बड़ा केंद्र थीं। सेल्यूकस और उसकी पुत्री हेलन का वर्णन और चंद्रगुप्त से उस यूनानी युवती का प्रेम पहली बार मेरे सामने एक रोमांटिक अध्याय के रूप में खुला। बाद में, प्रसाद को पढ़ते हुए इसकी तुलना मन में बार-बार उभरती रही। हेलन को ही प्रसाद ने 'कार्नेलिया' नाम दिया है। द्विजेंद्र लाल राय का यह नाटक भी मेरी स्मृति में छाया रहा।

जासूसी उपन्यासों जैसी रोमांचक शैली का एक उपन्यास मैंने उन दिनों पढ़ा था—'पर्णा'। बाद में मैंने जाना कि इसके लेखक गोविंद

बल्लभ पंत सामाजिक विषयों के कथाकार और नाटककार हैं। यह भी मैं बाद में ही जान पाया कि एक ही जगह, अल्मोड़ा के एक नाम के दो व्यक्ति इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर सके। एक साहित्यकार था, दूसरा राजनेता, जबकि आज भी अनेक लोग दोनों को एक मानने की भ्रांति पाले हैं। 'पर्णा' का कथानक दूसरे विश्व युद्ध से जुड़ा है। यद्यपि, इतने वर्षों के बाद उपन्यास का घटना-चक्र बहुत याद नहीं, लेकिन बर्मा, पूर्वी देशों तथा भारत के पूर्वोत्तर में द्वितीय विश्व युद्ध में

"राजपूताना के एक राजा ने शौर्य और निष्ठा के कारण विराट को अपना सेनाध्यक्ष नियुक्त किया था। राज्य में षड्यंत्रकारी विद्रोह हो जाता है। विराट अपने सैनिकों के साथ षड्यंत्रकारियों को रात में घेरकर मौत के घाट उतार देता है, लेकिन यह देखकर वह अवसन्न हो जाता है कि मृत विद्रोही सैनिकों में स्वयं उसका भाई भी है।"

होने वाली घटनाओं की एक धुँधली तस्वीर उपन्यास के माध्यम से जरूर मेरे मन में तैरती है। युद्धक विमानों की बम-वर्षा का रोमांचक वर्णन मेरे किशोर मन में सिहरन पैदा करता था। प्रेम, करुणा व साहस की कितनी गाथाओं को इस उपन्यास में बुना गया था।

उन दिनों पढ़े उपन्यासों की एक और खास भूमिका मेरे जीवन में रही। तब मेरे अनुभवों की सीमा ग्रामीण जीवन तक थी। पास के कस्बे जींद से तो मेरा परिचय था, लेकिन महानगरों से मेरा कोई वास्ता नहीं था। अनूदित साहित्य के पाठ ने मेरे अनुभव को विस्तार दिया। इनके माध्यम से किशोरावस्था में मैंने दुनिया को जानने की शुरुआत की। तीन विदेशी साहित्यकार विशेष रूप से स्मरण आ रहे हैं, जिनकी रचनाओं से मेरा परिचय उस समय हुआ था। वे थे—एलेक्जेंडर डूमा, एमिल जोला और स्टीफन ज़िग। अनुवाद के माध्यम से पढ़ी इन लेखकों की रचनाओं ने मुझे एक नितांत अनजानी और विचित्र दुनिया में ला खड़ा किया। जोला के फ्रांसीसी उपन्यास 'नाना' के प्रकृत यथार्थ से मेरा परिचय जितनी कम उम्र में हुआ, वह अपवाद ही है। इसकी घटनाओं और स्थितियों का मेरे अवचेतन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उच्च अध्ययन के दौरान जब अस्तित्ववादी और अति यथार्थवादी उपन्यासों, कविताओं आदि को पढ़ा तो लगा, जैसे पहले देखी कोई फिल्म फिर देख रहा हूँ। इस उपन्यास ने मेरे भीतर एक नया अनुभव रचा। सिगार पीती मॉडर्न महिला वाला 'नाना' का कवर मुझे आज भी याद है।

सबसे अधिक मुझे छुआ था स्टीफन ज़िग ने। तब मैंने उनके दो उपन्यास पढ़े थे—'एक अनजान औरत का खत' और 'विराट'। पहला उपन्यास बहुत ही करुण और भावपूर्ण है। इसमें प्रेम, निर्धनता और जीवन-संघर्ष का मार्मिक चित्रण है, लेकिन जो कृति मुझे आज तक 'हॉन्ट' करती रही है, वह है भारतीय पृष्ठभूमि पर लिखित छोटा-सा उपन्यास—'विराट'। मैंने इसे दसियों बार पढ़ा होगा। राजपूताना के एक राजा ने शौर्य और निष्ठा के कारण विराट को अपना सेनाध्यक्ष नियुक्त किया था। राज्य में षड्यंत्रकारी विद्रोह हो जाता है। विराट अपने सैनिकों के साथ षड्यंत्रकारियों को रात में घेरकर मौत के घाट उतार देता है, लेकिन यह देखकर वह अवसन्न हो जाता है कि मृत विद्रोही सैनिकों में स्वयं उसका भाई भी है। वह तलवार राजा को लौटाकर सेनापति का पद त्याग देता है। राजा उसे न्यायाधीश का पद ग्रहण करने के लिए मना लेता है। एक बार उसके सामने ऐसा अपराधी आता है, जिसने ग्यारह व्यक्तियों की हत्या की है। गहरे अंतर्द्वंद्व के बाद वह उसे 11 वर्ष के कारावास और प्रति वर्ष ग्यारह कोड़े लगाने की सजा देता है। हत्यारे के एक प्रश्न से वह विचलित हो जाता है कि मेरी स्वतंत्रता छीनने वाले तुम कौन होते हो? क्या तुम जानते हो कोड़े खाने की सजा क्या होती है? उसे अपने निर्णय पर पश्चाताप होता है और वह अपने दंड को अनुभव करने के लिए उससे एक माह बाद लौट आने का आश्वासन लेकर उसे रात को जेल से बाहर निकाल देता है। स्वयं अँधेरी काल कोठरी में समय बिताने लगता है। विराट कल्पना वाली इस कृति ने मेरे किशोर मन को झकझोर दिया था। अपराधी और न्यायाधीश, दोनों पात्र अविस्मरणीय हैं।

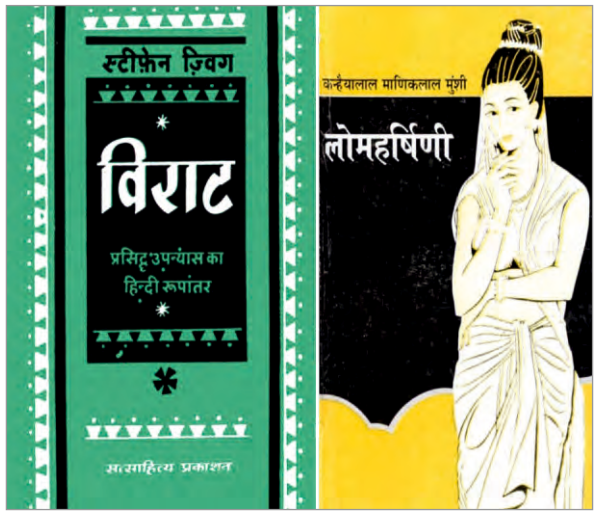

एलेक्जेंडर डूमा के प्रसिद्ध उपन्यास 'ल्या ट्यूलिप नुआर' का हिंदी अनुवाद 'काला फूल' शीर्षक से हुआ है। इसमें क्रूर शासन के प्रति विद्रोह की सजा काट रहे एक युवक की कहानी है। जेलर की बेटी मानवीय संवेदनाओं से अभिभूत हो उसकी सहायता करती है और उसके प्रेम में पड़ जाती है। 19वीं शताब्दी के फ्रांस की सामंती व्यवस्था के शोषण का सशक्त चित्रण करने वाला यह उपन्यास अपनी रोचक वर्णन-शैली के कारण बहुत आकर्षक लगा था। ऐसी पुस्तकों ने धीरे-धीरे मेरे मन में साहित्य का एक बिंब निर्मित किया और परोक्ष रूप में लेखन की प्रेरणा दी। संयोग से उस समय मैंने

ज्यादातर उपन्यास पढ़े थे। मैं कथाकार तो नहीं बन पाया, लेकिन मेरी काव्य-कृतियों को इन कथा-कृतियों के रूपात्मक वर्णन ने बिंबात्मक भाषा प्रदान की है।

'गुडबाय मिस्टर चिप्स' सीधे अंग्रेजी में पढ़ा गया मेरा पहला उपन्यास था। इस उपन्यास ने मुझे बहुत अभिभूत किया था। आगे चलकर अपने लंबे अध्यापकीय जीवन का सादृश्य बार-बार इस उपन्यास के कथानायक चिप्स के जीवन से पाता रहा। चिप्स ने युवावस्था में लंदन के एक प्रसिद्ध स्कूल में अध्यापन आरंभ किया तो पैंसठ की उम्र में रिटायर भी हुआ, लेकिन प्रथम विश्व युद्ध की संकट की स्थिति में फिर उसकी सेवाएँ ली गईं। वह अपने सामने बेंचों पर बैठे छात्रों के चेहरों में उस अतीत को देखता था, जब उनसे पहले उनके पिता और उनसे भी पहले उनके पिता के पिता, और भी पहले उनके भी पिता बैठा करते थे। इस कारुणिक उपन्यास पर आठ लोकप्रिय फिल्में बनी हैं। चिप्स का 85 वर्षों का जीवन एकाकी ही रहा। जीवन के मध्याह्न में केवल दो वर्ष उसे एक युवती का साथ मिला, लेकिन प्रसव के दौरान पत्नी और शिशु के चले जाने के बाद फिर वही सूनापन। वृद्धावस्था में उसका एक किशोर छात्र अकसर उसके पास आकर बैठा करता। एक उदास एकाकी सुबह उस किशोर ने चिप्स को लंबे समय तक निष्क्रिय पाया तो उसने उसका फेल्ट-हैट सरकाया। सब कुछ समझकर उसने इतना भर कहा—'गुड बाय मिस्टर चिप्स!' और धीरे-से उसका चेहरा फेल्ट-हैट से ढक दिया।

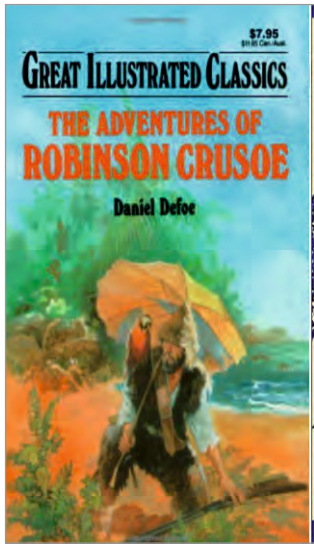

मूल अंग्रेजी में पढ़ा गया दूसरा उपन्यास था डेनियल डिफो का 'एडवेंचर्स ऑफ रॉबिंसन क्रूसो'। यह तो बाद में जाना था कि यह उपन्यास पश्चिम में इस विधा की नींव रखने वाली कृतियों में है। पहली बार बहुत समझ में नहीं आया। फिर पढ़ा। इसके रोमांचकारी कथानक ने मोह लिया। दुनिया को जानने की इच्छा से भरे एक किशोर के यात्रा-प्रेम से उपजी चुनौतियाँ, किनारे खड़े समुद्री जहाज में उसका छिपना, बीच समुद्र में जहाज का दुर्घटनाग्रस्त होना, रॉबिंसन का बचकर निर्जन टापू पर पहुँचना और फिर उसके अस्तित्व की दीर्घ संघर्ष-कथा लेखक ने जिस रूप में प्रस्तुत की थी, मेरा किशोर मन उसके कथा-रस में डूबता चला गया। मुझे वह मानव-सभ्यता के विकास की कहानी लगी थी, जो निर्जन द्वीप की उस दुनिया में मनुष्य और प्रकृति के बीच संवाद, संघर्ष और सहयोग की अद्भुत गाथा नजर आई थी। टापू के दूसरे छोर पर रॉबिंसन द्वारा देखे गए नरभक्षियों के नृत्य और उसके भय को मैंने गहराई तक अनुभव किया था। मैन फ्राइडे को बचाने का प्रसंग भी रोमांचक है। इस पुस्तक से मुझे और अंग्रेजी उपन्यासों को पढ़ने की प्रेरणा मिली और मेरा साहित्यानुराग और दृढ़ हुआ।

अंग्रेजी में तब एक और प्यारी-सी किताब पढ़ी थी—'लेटर्स फ्रॉम ए फादर टू हिज़ डॉटर'। जवाहरलाल नेहरू के बारे में तो बहुत पढ़ा-सुना था, पर अपनी 10 साल की बेटी इंदिरा के नाम जेल से लिखे गए उनके पत्रों का यह संग्रह बहुत अपना-सा लगा था। वह उपन्यास जैसा ही रोचक था। प्रवाहमयी भाषा में प्राकृतिक इतिहास, विश्व सभ्यताओं के विकास, भारतीय इतिहास, राजनीति और नैतिकता का ज्ञान जिस रोचक शैली में इन पत्रों में वर्णित था, वह मेरे लिए वरदान था। ये वे दिन थे जब मेरे भीतर दुनिया को जानने-समझने की एक गहरी ललक थी। ये पत्र मुझे भारत के प्रत्येक किशोर को संबोधित लगे। मुझे लिखने की ओर प्रेरित करने वाली पुस्तकों में नेहरू जी की इस पुस्तक का स्थान विशेष है।

इस प्रकार, 15-16 वर्ष का होते-होते मैंने सैकड़ों पुस्तकें पढ़ डाली थीं, मेरे अवचेतन पर उनकी गहरी छाया पड़ी। भाषा की समझ और अभिव्यक्ति के कौशल को अर्जित करने में मुझे उनसे बहुत सहायता मिली। अधिकतर किताबें गद्य की थीं, लेकिन किशोरावस्था में ही कुछ कविता-पुस्तकें भी मेरे हाथ लगीं। मेरी आरंभिक तुकबंदियों का स्रोत उन्हीं में है। प्रसाद की आरंभिक कृति 'प्रेमपथिक' पिता जी के संग्रह में थी। उन्होंने 1962-63 के आस-पास हिंद पॉकेट बुक्स आदि से प्रकाशित क्षेमचंद सुमन, नीरज और अन्य द्वारा संपादित, हिंदी के प्रेम गीत, हिंदी के शृंगार-गीत जैसी पॉकेट बुक्स खरीदी थीं। उन्हें मैं गुनगुनाकर पढ़ता। अनेक गीत कंठस्थ हो गए थे। उसी शैली में तब मैंने कई प्रेम-गीत रच डाले। अब मेरे मन में छपने की लालसा भी जागने लगी थी। पिता जी के पास जो पत्रिकाएँ थीं उनमें सबसे अधिक अंक 'नवनीत' और 'धर्मयुग' के थे। 1968 में मैंने 'नवनीत' में एक गद्य-रचना भेजी। वह छप गई। फिर मैंने कुछ गीत 'हिंदी मिलाप' को भेजे। वे भी छप गए। यों मैं क्रमशः पठन के साथ-साथ लेखन में उतरने लगा। निश्चित रूप से यह बचपन से पुस्तकों में खो जाने का ही परिणाम था। आज उस रोमांचक सफर को याद करते हुए उस दौर में पढ़ी रचनाओं को और उनके रचनाकारों को मैं शिष्यवत प्रणाम करता हूँ।

सिंध का विभाजन और उपहास की पीड़ा

चोट या आघात लगने के बाद पीड़ा व कष्ट तब कई गुना बढ़ जाता है, जब उसका मजाक उड़ाया जाता है। 15 अगस्त, 1947 को हुए भारत-पाकिस्तान विभाजन के परिणामस्वरूप पंजाब और बंगाल का एक भू-भाग पाक में सम्मिलित किया गया। सिंध एकमात्र प्रदेश था, जहाँ से थारपारकर जैसी हिंदू आबादी के बहुत बड़े हिस्से में विद्यमान होते हुए भी, सभी हिंदू सिंधी भाषियों को पलायन के लिए विवश किया गया। हैदराबाद, कराची और सक्खर सिंध के तीन सबसे बड़े शहर थे। हैदराबाद की आधुनिकता, कराची के बंदरगाह और सक्खर की सिंधु नदी के किनारे बसे नगर के नाते विशेष मान्यता थी। सिंध के ये तीनों बड़े शहर हिंदू बहुल थे। संपूर्ण सिंध के संदर्भ में भले ही मुस्लिम आबादी 73 प्रतिशत थी और विभाजन का आधार धर्म था, मगर अधिकांश हिंदू शहरों व

भगवान अटलानी

जन्म : 10 मार्च, 1945, लाड़काणा (सिंध)

प्रकाशन : हिंदी में 15, सिंधी में 13 एवं स्वयं अथवा अन्य द्वारा अनूदित 12, कुल 40 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

पुरस्कार : केंद्रीय साहित्य अकादेमी का 2025 के लिए सिंधी भाषा का सर्वोच्च पुरस्कार, राजस्थान हिंदी साहित्य अकादमी के सर्वोच्च सम्मान 'मीरा पुरस्कार', राजस्थान सिंधी अकादमी के सर्वोच्च सम्मान 'सामी पुरस्कार' सहित 35 से अधिक सम्मान प्राप्त हैं।

संपर्क : मोबाइल– 9828400325
ई-मेल– bhagwanatlani@rediffimail.com

कस्बों में तथा मुसलमान ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते थे। इनमें भी हिंदू वर्ग जमींदार था। उनके यहाँ कारिंदे मुस्लिम समाज के थे। तालमेल बहुत अच्छा था। सौजन्य, सामंजस्य, भाईचारा, सुख-दुख में साथ खड़े होने की प्रवृत्ति हिंदुओं और मुसलमानों में प्रचुर मात्रा में दिखाई देती थी। धार्मिक विभेद के बावजूद आपसी मेल-जोल और सौहार्द इतना अच्छा था कि विभाजन की घोषणा के बाद भी स्थानीय मुसलमान, वहाँ रहने वाले अल्पसंख्यक हिंदुओं के प्रति दुर्भावना के शिकार नहीं थे। उनकी भरसक कोशिश थी कि हिंदू सिंधी पलायन न करें। इन स्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए पूरा सिंध पाकिस्तान को सौंपने का निर्णय किसी भी तर्क के आधार पर न्यायसंगत नहीं था।

ऐसा भी नहीं था कि हिंदू अथवा मुस्लिम सिंधी भाषियों ने भारत की स्वतंत्रता के लिए प्राणों की आहुति न दी हो। उबैदुल्लाह सिंधी ने भारत की आजादी के लिए अंग्रेजी सत्ता के शोषण के विरुद्ध संघर्ष किया। परचा विद्यार्थी और हेमू कालाणी जैसे किशोरों ने क्रांतिकारी गतिविधियों में अग्रगण्य भूमिका निभाई। शहीद हेमू कालाणी को तो मात्र 21 वर्षों की युवावस्था में अंग्रेजों ने फाँसी के फंदे पर झुलाया था।

गांधी जी के आह्वान पर सिंध के बाल, युवा व स्त्री वर्ग ने प्रत्येक अहिंसक आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मीटिंग कीं, जेल यात्राएँ कीं, अंग्रेजों के स्थापित शिक्षा संस्थान छोड़कर भविष्य को दाँव पर लगाया और आजीवन खादी पहनने का व्रत लिया। शेर-ए-हिंद डॉ. चोइथराम गिदवाणी, पोपटी हीरानंदाणी, हूंदराज दुखायल और हासानंद जादूगर जैसे अनेक सपूतों व सुपुत्रियों ने गांधी जी के प्रत्येक इशारे को सिंध में आग बनाया। जयरामदास दौलतराम की स्वतंत्रता आंदोलन में नेतृत्व-प्रखरता का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि पं. नेहरू के मंत्रिमंडल में वे खाद्य मंत्री नियुक्त किये गए। बाद में उन्हें असम राज्य का राज्यपाल भी नियुक्त किया गया। इसके बावजूद, संपूर्ण सिंध को तश्तरी में रखकर पाकिस्तान को भेंट कर दिया गया।

सिंधी साहित्य के प्रगतिशील युग के सशक्त स्तंभ और साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्राप्त साहित्यकार कीरत बाबाणी ने सिंधी की साहित्यिक पत्रिका, 'कूंज' के अक्तूबर-दिसंबर, 1987 अंक में प्रकाशित आलेख 'शाह की शायरी में राष्ट्रीय भावना और बिछुड़ने का दर्द' में लिखा, 'एक सभ्य जाति क्षणभर में अपनी शानदार विरासत से कटकर, कण-कण होकर दर-बदर हो गई। अगर हमसे कोई पूछता तो ऐसी आजादी हम कतई स्वीकार नहीं करते। ऐसी आजादी, जो हमारी धरती के रूप में मूल्य चुकाकर ली गई है। संपूर्ण सिंध की बलि चढ़ाकर।' सिंधी के उपन्यास सम्राट गोविंद माल्ही ने अपने उपन्यास 'डेही परडेही थिया' (देसी परदेसी हुए) के 'द्वितीय संस्करण' की 'भूमिका' में लिखा, 'भारत की आजादी विभाजन की लानत को साथ लेकर आई। हिंदू सिंधी जन्मभूमि सिंध छोड़कर कर्मभूमि भारत आए, लेकिन उन्हें एक स्थान पर नहीं बसाया गया। समस्त पश्चिमी भारत में फैले शहर से दूर बसे मिलिट्री शिविरों में पनाहगीर बनाकर, रहने का स्थान दिया गया। हिंदुओं को शिविरों में कमोबेश भिखारी जीवन व्यतीत करने के लिए विवश किया गया।'

स्थितियों का दिल दहलाने वाला विवरण देते हुए कीरत बाबाणी ने साप्ताहिक 'झूलेलाल' के 10 मार्च, 1998 को प्रकाशित अंक के आलेख 'सिंधियुनि जो अर्धसदीअ जो बेजोड़ इतिहास' में लिखा, 'जन्मभूमि छोड़ते समय सिंधी हिंदुओं ने कल्पना भी नहीं की थी कि उन्हें भारत में टूटे-फूटे सैनिक बैरिकेटों के बड़े हॉलों में बोरियों के पर्दे लगाकर व्यक्तिगत जिंदगी जीनी पड़ेगी। औरतों व पुरुषों को बैरकों के बाहर गंदे, सड़ांध मारते, बिना दरवाजों वाले शौचालयों के सामने पंक्तियों में कष्टदायक और अपमानजनक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। बैरकों के टाट लगे कोने महिलाओं के स्नानगृह होंगे। हिकारत से भरे व्यवहार के बीच राशन ऑफिस से चीनी, गेहूँ, चावल, तेल, नमक, मिर्च, लकड़ियों और मिट्टी के तेल के रूप में मिली भीख को मीलों-मील कंधों पर ढोकर घर नाम के दड़बे में आना पड़ेगा।'

विभाजन के ठीक पहले, 72 दिन भारत के वायसराय रहे लॉर्ड माउंटबेटन के प्रेस अटैची कैंपबेल जॉनसन ने अपनी पुस्तक 'मिशन विद माउंटबेटन' में माउंटबेटन के साथ हुई गांधी, नेहरू, पटेल, जिन्ना आदि की चर्चाओं का खुलासा किया है। आश्चर्यजनक बात यह है कि इस बातचीत में दंगाग्रस्त पंजाब और बंगाल में स्थिति नियंत्रण में लाने के लिए अपेक्षित रणनीति पर तो विस्तार से विचार किया गया है, किंतु सिंध का नाममात्र के लिए एक बार भी उल्लेख नहीं हुआ है। सिंध के संदर्भ में तत्कालीन राजनीतिक नेतृत्व की उदासीनता को सब कुछ खो चुके हिंदू सिंधियों के जले पर नमक छिड़कना कहा जाएगा।

विभाजन के बाद यहाँ-वहाँ बिखरे, जीने के लिए संघर्षरत सिंधी समाज के सामने सबसे बड़ा प्रश्न अपनी भाषा और संस्कृति को बचाने का था। आरंभ में, बड़ी संख्या में सिंधी समुदाय कराची से स्टीमर से मुंबई आया था। उल्हास नगर (तब कल्याण कैंप) में उनके रहने की व्यवस्था की गई थी। इसलिए मुंबई में सर्वप्रथम 'कूंज' जैसी पत्रिकाएँ तथा 'अखिल भारत सिंधी बोली ऐं साहित सभा' जैसी संस्थाओं की स्थापना हुई। बाद में, धीरे-धीरे नाट्य, संगीत, चित्रकला, नृत्य आदि को समर्पित संस्थाएँ संपूर्ण देश, विशेष रूप से पश्चिमी व उतरी भारत में स्थापित हुईं, जहाँ सिंधी भाषियों की संख्या अधिक थी। कठिनाई से उपार्जित कमाई में से किसी तरह पैसा-पैसा बचाकर ये गतिविधियाँ शुरू की गईं। लेखक और कलाकार तृतीय श्रेणी में रेल यात्राएँ करके अपने खर्च पर यहाँ से वहाँ दूसरे शहरों में जाते थे। आयोजक उन्हें जमीन पर हॉल में एक साथ सुलाते थे। पुस्तकों को अपने व्यय से प्रकाशित कराया जाने लगा। रचनाओं में सिंध की स्मृतियाँ, विस्थापन का दर्द और भारत में दरपेश आने वाली कठिनाइयों का खुलासा होता था। यह सब क्योंकि सिंधी भाषा में होता था इसलिए केवल सिंधी भाषी ही उसे पढ़ सकते थे।

सतत प्रयत्न और लंबी जद्दोजहद के बाद केंद्र और कुछ प्रांतों में सिंधी अकादमियाँ स्थापित कराने में सफलता मिली। भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में 10 अप्रैल, 1967 को सिंधी भाषा को मान्यता प्राप्त हुई। भारत में सिंध प्रांत नहीं था, न है। इसलिए भाषा, सभ्यता, संस्कृति, कला और नाटक को आगे ले जाने ही नहीं, अपने स्थान पर कायम रखने में भी कठिनाई थी। धनाभाव की समस्या थी ही। शासकीय संरक्षण आधा-अधूरा था। ऐसी स्थितियों में स्वाभाविक था कि सिंधी न जानने वालों के साथ सिंधी भाषियों तक के लिए सिंध का विभाजन पीछे धकेल दिया गया।

यहाँ तक कि विभाजन को केंद्र में रखकर बनी फिल्मों, दूरदर्शन धारावाहिकों और प्रदर्शित कथा फिल्मों में पंजाब व बंगाल की विभाजन के दौर की लोमहर्षक गाथाएँ तो बहुतायत में देखने को मिलती हैं, मगर सिंध को पूरी तरह भुला दिया गया। पूरा प्रदेश खोकर, लूट-पाट, हत्याओं, अनपेक्षित अपमानों को सहकर, पुनर्स्थापना के लिए कठोर परीक्षा देने वाले एक समुदाय ने निरंतर इस उपहासपूर्ण व्यवहार को अनुभव किया है।

केंद्रीय साहित्य अकादेमी में सिंधी की स्वीकृत लिपि अरबी है। सिंधी भाषा में शिक्षा व्यवस्था की कमी के कारण भारत में सिंधी की अरबी लिपि जानने वालों की संख्या नगण्य हो गई है। विभाजन हुए 78 वर्षों से अधिक की अवधि व्यतीत हो गई है। भारत में विभाजन के तुरंत बाद जन्म लेने वाले सिंधी भाषी अब बुजुर्ग हो चुके हैं। बहुधा उन्हें भी अरबी लिपि का ज्ञान नहीं है। इसके बावजूद, बुजुर्गों के मार्गदर्शन और सिंधी समाज में प्रचलित पंचायत प्रणाली के चलते विपरीत स्थितियों से संघर्ष जारी है।

सिंधी समाज अब भी आशान्वित है। भरोसा है उसे कि विभाजन के बाद उपहास के कारण उपजे हालात पर विजय प्राप्त होगी। मोहनजोदड़ो की सभ्यता और सिंधु घाटी की गाथा का गुणगान होगा। अब आर्थिक, सामाजिक, व्यापारिक और राजनीतिक बल सिंधी समाज के पास है। कठिनाइयों पर काबिज होकर सफलता का वरण सिंधी समाज के स्वभाव में है। निश्चय ही वह अपने बूते पर सभ्यता और संस्कृति का परचम लहराने में कामयाब होगा।

1857
अब नहीं रहा वह आख़िरी गवाह

"वह बड़ा ही दर्दनाक मंजर था, पहला 08 अगस्त, 1857 को और दूसरा अप्रैल और अक्तूबर, 1958 में। इतनी तबाही और नफरत मैंने कभी नहीं देखी। अंग्रेज सिपाही अपने जूतों की नोक से जगह-जगह ईंटों और दीवारों को ठोकरें मार रहे थे, मानो गढ़ में समाई कुँवर सिंह के योद्धाओं के लहू की बूँद कहीं बागी बनकर अंग्रेज सिपाहियों के सामने खड़ी न हो जाए।"

नहीं रहा 1857 का वह बूढ़ा बरगद। पिछले दिनों आई आँधी में उखड़ गया। न 23 अप्रैल को होने वाले जगदीशपुर का विजय दिवस का उत्सव देख पाया, और न ही 26 अप्रैल के 168वें स्मृति दिवस का गवाह बन पाया। असमय आई आँधी को सँभाल नहीं पाया। चला गया। करता भी क्या! अब किसी की सुनता ही कौन है! न पत्ते सुनते हैं, न फूल, न पत्तियाँ और न टहनियाँ हीं। हर चीज अब बाजार की तरफ मुँह फेरकर खड़ी हो गई हैं। यहाँ तक कि नीचे दिख रहा तालाब का पानी भी अब दूर जाने लगा है।

यह एक आहत करने वाली खबर थी। 1857 में ईस्ट इंडिया कंपनी के औपनिवेशिक शासन के खिलाफ बिहार के जगदीशपुर में हुए विद्रोह की अंदरूनी कहानियाँ एवं घटनाओं का वह इकलौता मूकदर्शक था। लोग कहते हैं, उसने 1857 के विद्रोह के बाद जगदीशपुर में हुए अंग्रेजी राज के उस दमन को देखा था, जिसे सुनकर आज भी लोग सिहर जाते हैं। पटना में पीर अली की फाँसी, दानापुर के देसी पल्टन के सिपाहियों का विद्रोह, उनका जगदीशपुर पहुँचना और कुँवर सिंह से नेतृत्व का आग्रह करना, कंपनी के सिपाहियों का जगदीशपुर पर हमला, गढ़ को तोप से उड़ाना, पकड़े गए विद्रोहियों को पेड़ों पर लटकाकर बिना सुनवाई के फाँसी दे देना, स्त्रियों पर अत्याचार, छोटे किसानों से जबरदस्ती अफीम और गाँजा की खेती करवाना, खेतिहर मजदूरों का शोषण, मवेशियों की नृशंस हत्याएँ, बंग-भंग और गांधी के चंपारण आने की आहट, सन् 42 का आंदोलन आदि न जाने दमन और उत्पीड़न की ऐसी कितनी घटनाएँ थीं, जिसका गवाह यह बरगद था!

पहली बार हमने उसे 2005 में देखा था, जब इतिहासकार रश्मि चौधरी के साथ 1857 के सेनानी कुँवर सिंह के गढ़ की यात्रा

देवेंद्र चौबे

जन्म : 29 दिसंबर, 1965 को बिहार के बक्सर जिले के अहिरौली ग्राम में

प्रकाशन : एनबीटी, इंडिया से 'पंचकोशी मेला' के अतिरिक्त, अन्य प्रकाशनों से 'आधुनिक भारत के इतिहास लेखन के कुछ साहित्यिक स्रोत', 'कुछ समय बाद' (कहानी-संग्रह), 'सुराज' (नाटक), 'पर, ज़रूरी है कविता' आदि पुस्तकें प्रकाशित।

यात्राएँ : लेखक/शिक्षाविद् के रूप में जापान, चीन, मॉरीशस, उज्बेकिस्तान आदि देशों की यात्राएँ।

अन्य : महात्मा गांधी संस्थान, मोक्का, मॉरीशस में विजिटिंग स्कॉलर और ताशकंद राज्य प्राच्य अध्ययन विश्वविद्यालय (उज्बेकिस्तान) में विजिटिंग प्रोफेसर रह चुके।

संप्रति : वर्तमान में जेएनयू के भारतीय भाषा केंद्र, नई दिल्ली में प्रोफेसर हैं।

संपर्क : मोबाइल– 8383842812
ई-मेल– devendrachoubeyjnu@gmail.com

हुई थी। फिर हम 2006 में मिले और आखिरी बार 2019 में 'मेरा गाँव, मेरा इतिहास' पर केंद्रित एक कार्यक्रम में, जब हमने उसके नीचे खड़े होकर गाँव के लोगों से 1857 के संघर्ष की कहानियाँ सुनी थीं। कई बार उसके नीचे खड़ा होकर लगता था कि वह टहनियाँ और पत्तियाँ हिलाकर हमसे अपनी असहमति जाहिर कर रहा है कि 'नहीं, ऐसा नहीं हुआ था, उस दिन! 08 अगस्त का वह दिन बहुत भयावह था। अंग्रेजी फौज के जाने के बाद गढ़ की टूटी खिड़कियाँ, जमीन पर पड़े दरवाजे, आँगन में बिखरे लहू, टूटी दीवारें बता रही थीं कि संघर्ष भीषण हुआ था। गढ़ की रक्षा करते हुए आँगन में हजारों लोग मारे गए थे।'

स्मृतियाँ ऐसी ही होती हैं, चाहे वह नागरिक समाज की हों अथवा मानवेतर प्राणियों की। बार-बार लौटकर आती हैं, कभी भयावह शक्ल में तो कभी औपनिवेशिक शासन की वर्तमान जमीन को रौंदते और चिढ़ाते हुए। टर्की के लेखक ओरहन पामुक के इस्तांबुल की उस कहानी की तरह, जिसे जितनी बार भुलाने की कोशिश हुई, अगली बार वह उतनी ही ताकत के साथ दुबारा आई। इतिहास की परिघटनाएँ ऐसी ही होती हैं। वे बार-बार लौटकर आती हैं, 'तुम मुझे जितनी बार भुलाओगे, उतनी ही बार दुबारा लौटकर आऊँगी, एक-दो नहीं, पूरी सदी की दास्तान लेकर!'

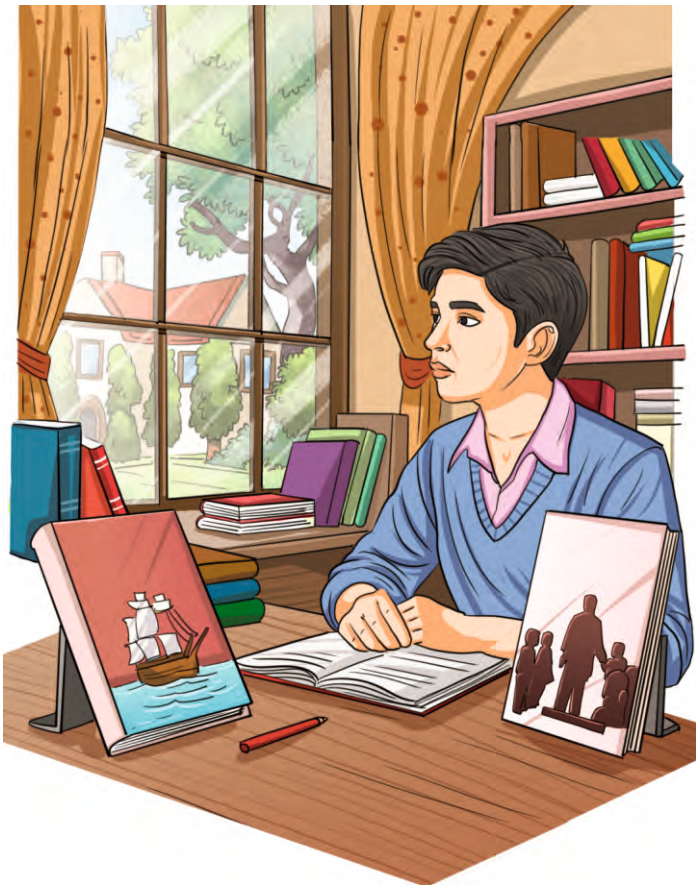

वर्ष 2019 की वह सुबह याद है, जब 1857 के योद्धा कुँवर सिंह की वर्तमान पीढ़ी के निमंत्रण पर सुबह-सुबह हम सब उसके पास इकठ्ठा हुए थे। 'मेरा गाँव, मेरा इतिहास' परिसंवाद के पहले हमारी एक जनजागरण परिक्रमा यात्रा गढ़ के चारों ओर होनी थी। विचारक नागेंद्र नाथ ओझा, महाराजा कॉलेज के प्रो. कन्हैया बहादुर सिन्हा, इतिहासकार रश्मि चौधरी, सीमा पटेल, कवि कुमार नयन, लक्ष्मीकांत मुकुल, चर्चित लेखक सुरेश कांटक, देवेंद्र चौबे, कुँवर सिंह की वर्तमान पीढ़ी के सदस्य दुर्ग विजय सिंह, आरा से आए डॉ. नीरज कुमार सिन्हा, जगदीशपुर निवासी शाहबाज़ वारिश खान, विजय शंकर, नथुनी मालाकार, आलोक घोष, पंकज सिंह, अंगद सिंह, विवेक सागर, आस सिंह, संदीप सिंह और कई अनगिनत ग्रामीण बुद्धिजीवी आ चुके थे।

'यह वही बरगद है, जिसे हमारे पूर्वज गढ़ का रक्षक भी बताते हैं।' सेनानी कुँवर सिंह की वर्तमान पीढ़ी के सदस्य दुर्ग विजय बता रहे थे, 'इसने कंपनी राज के खिलाफ जगदीशपुर की बगावत भी देखी है और उसका (कंपनी) अत्याचार भी।'

कंपनी राज के खिलाफ की गई बगावत के गवाह उस बूढ़े बरगद के नीचे से हमारी परिक्रमा यात्रा शुरू हुई थी। उधर, दुर्ग विजय बताते जा रहे थे, 'यह हमारा पूर्वज भी है, करीब दो सौ साल पुराना! जब 08 अगस्त, 1857 को अंग्रेजी फौज के हमले में, आँगन में कुँवर सिंह और अमर सिंह की कंपनी के मेजर विंसेट आयर के साथ आखिरी लड़ाई शुरू हुई थी, तब यह बरगद करीब बीस-बाईस साल का रहा होगा। तोपों के बारूद से गढ़ की एक-एक दीवार ढह रही थी।' वह कह रहे थे, 'तभी इस बरगद ने एक आवाज सुनी—'भैया, आप और अमर सिंह सबको लेकर निकल जाइए। कंपनी की फौज को हम लोग रोकते हैं।''

यह आवाज थी, जागेश्वर प्रसाद सिंह की, जो अंतिम गोली के रहने तक मोर्चा सँभाले रहे और कुँवर सिंह को अपनी सेना के साथ दूर निकल जाने दिया। कहते हैं, जब विंसेंट आयर अपनी टुकड़ी के साथ आँगन के उस मोर्चे पर आया तो देखा कि आँगन में एक आदमी लहूलुहान मृत पड़ा हैं। बूढ़े बरगद के नीचे खड़े दुर्ग विजय सिंह बता रहे थे कि 'हमें तो सिर्फ अनुमान है, पर इस बरगद के पेड़ ने वह मंजर देखा, जिसे बाद में ढह चुके गढ़ के बचे हुए लोग बताते हैं, 'खून से लथपथ जागेश्वर प्रसाद सिंह की लाश आँगन में पड़ी हुई थी, फिर भी अंग्रेज सैनिक उसके करीब जाने से डर रहे थे। कई बार दूर से ही संगीनों से भोंक-भोंककर देखा, लात से ठोकर मारी और जब आश्वस्त हो गए कि उनके प्राण जा चुके हैं, तब करीब गए। मलबे में

तब्दील हुआ पूरा घर, लहूलुहान आँगन, हर कोने को छान मारा, पर कुँवर सिंह नहीं मिले। मिलते भी कैसे! वह तो अंग्रेजी फौज की पकड़ से बहुत दूर जा चुके थे।'

उसके बाद की कहानी तो सबको याद है कि कैसे बीबीगंज, बाँदा, कालपी, कानपुर, लखनऊ, आजमगढ़ आदि में कुँवर सिंह अपने सहयोगियों के साथ कंपनी और ब्रिटिश राज के खिलाफ लड़ते रहे और आखिरी लड़ाई 23 अप्रैल, 1858 को जगदीशपुर में लड़ी।

“बाबू कुँवर सिंह कितना प्यार करते थे उन्हें! वह लोगों को बताना चाहता था कि बाबू कुँवर सिंह ऐसे लोगों से कितना प्यार करते थे, जिनके दिल में मिट्टी का मोह था और देश के प्रति प्यार। बाद में पटना से कोई इतिहासकार भी तो उसके करीब नही आया, जिसे वह यह बताता कि ‘एक थे जागेश्वर प्रसाद सिंह और एक थी उनकी बंदूक, जो 1857 में खूब चली! इतनी चली कि गढ़ का आँगन गोरे सिपाहियों के खून से लाल हो गया! जब तक वह योद्धा जिंदा रहा, क्या मजाल कि कोई आँगन पार कर गढ़ के पिछले दरवाजे से कुँवर सिंह का पीछा कर पाए...! वह बंदूक, बाबू जागेश्वर प्रसाद सिंह के साथ लड़ते-लड़ते चल बसी। ...पर दोनों लड़े बहुत बहादुरी से।”

अंग्रेज कप्तान ली ग्रांड को आमने-सामने की लड़ाई में हराकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नींव हिला दी! पूरे शाहाबाद से अंग्रेजी फौज भाग गई। इतिहासकारों ने लिखा है कि 1857 के संघर्ष में यह अंग्रेजों की सबसे बड़ी पराजय थी।

कहते हैं, उधर 1857 का संघर्ष चल रहा था, इधर यह पेड़ चुपचाप जगदीशपुर का एक नया ब्रिटिशकालीन इतिहास बनता देख रहा था और गढ़ता जा रहा था, भविष्य के भारत की तस्वीर कि देश की आजादी के बाद तो उन सबकी भी कहानियाँ लिखी जाएँगी, जो अपनी धरती को बचाते हुए मारे गए और जिनकी कहानियाँ न तो लेखकों ने लिखीं और न ही जिनके नामों का उल्लेख ब्रिटिश इतिहासकारों ने कहीं किया।

बूढ़ा बरगद बताता था कि कई कहानियाँ छूट गईं, इतिहास के जीवंत पन्ने बिखर गए। किस्सागो भी एक-एक कर चले गए। अब बचे थे गढ़ के चारों ओर खड़े ये मूक गवाह और उनमें सबसे पुराना यह बरगद। वह भी कब तक टिकता! पिछले दिनों आई भीषण आँधी में एक नई सुबह का इंतजार करता यह बूढ़ा बरगद भी जड़ से उखड़ गया।

उसका दुःख एक बड़ा दुःख था, हिमालय से भी बड़ा। उसने 08 अगस्त, 1857 को अकेले उस छोटी-सी बंदूक से आँगन में लड़ते हुए जागेश्वर प्रसाद सिंह को देखा था। उसे इस बात का बड़ा दुःख था कि 1857 के शहीद जागेश्वर प्रसाद सिंह की कहानी किसी ने नहीं लिखी। न इतिहासकारों ने उनका इतिहास लिखा और न ही साहित्यकारों ने अपनी कलम चलाई। बाबू कुँवर सिंह कितना प्यार करते थे उन्हें! वह लोगों को बताना चाहता था कि बाबू कुँवर सिंह ऐसे लोगों से कितना प्यार करते थे, जिनके दिल में मिट्टी का मोह था और देश के प्रति प्यार। बाद में पटना से कोई इतिहासकार भी तो उसके करीब नहीं आया, जिसे वह यह बताता कि ‘एक थे जागेश्वर प्रसाद सिंह और एक थी उनकी बंदूक, जो 1857 में खूब चली! इतनी चली कि गढ़ का आँगन गोरे सिपाहियों के खून से लाल हो गया! जब तक वह योद्धा जिंदा रहा, क्या मजाल कि कोई आँगन पार कर गढ़ के पिछले दरवाजे से कुँवर सिंह का पीछा कर पाए...! वह बंदूक, बाबू जागेश्वर प्रसाद सिंह के साथ लड़ते-लड़ते चल बसी। ...पर दोनों लड़े बहुत बहादुरी से।

आगे 23 अप्रैल, 1858 को जो हुआ, उसे तो सभी ने देखा और सुना, परंतु युद्ध में पूरी तरह से घायल होने के बाद 26 अप्रैल, 1858 को गुजर गए बाबू कुँवर सिंह के जाने के बाद जो हुआ, उसे किसी ने नहीं देखा। गढ़ में हुआ वह हादसा बड़ा भयानक था। वह बूढ़ा बरगद आने-जाने वाले लोगों को कहानियाँ सुनाते रहता था, ‘मैंने दूसरी बार जगदीशपुर को उजड़ते हुए देखा। मैंने देखा कि अंग्रेजों की फौज ने पूरे जगदीशपुर को घेर रखा है, तोपों से निकले बारूद के गोले एक-एक कर गढ़ को ध्वस्त करते जा रहे हैं, अमर सिंह अपनी छोटी टुकड़ी के साथ दक्षिण महल की तरफ निकल गए हैं। अंग्रेजी फौज लोगों को मारते-उड़ाते मेरे करीब पहुँच गई थी...। कुछ लोगों को उन्होंने पकड़ रखा है... यह क्या, मेरी टहनियों पर मोटी-मोटी डोरियाँ डाली जा रही हैं। मैं अपना सुध-बुध खो रहा था... अब एक-एक कर लोगों को मेरे ऊपर लटकाया जा रहा था... अनगिनत लोग... कई दिन लटकती रहीं उनकी देह...! आज मैं जमीन पर पड़ा सोचता हूँ कि कैसे 168 वर्ष उनकी स्मृतियों को मैं ढोता रहा! क्या इतिहास मुझे माफ करेगा...’

और अमर सिंह, बूढ़ा बरगद गवाह है कि अंग्रेजी फौज उन्हें ढूँढ़ती रही। कहते हैं, ब्रिगेडियर डगलस और जनरल लुगार्ड के साथ उनका बिहिया, हातमपुर, दल्लीपुर और कई जगह मुकाबला हुआ। 17 से 19 अक्तूबर को दुबारा अमर सिंह का अंग्रेजी फौज से जगदीशपुर में मुकाबला हुआ। 19 अक्तूबर के नोनादी गाँव में तो अमर सिंह के अधिकांश साथी मारे गए, पर वह अपनी एक टुकड़ी के साथ बचकर निकल गए। कोई कहता कि वह आजीवन कैमूर की पहाड़ियों में अंग्रेजी राज के खिलाफ लड़ते रहे, तो कोई कहता कि अमर सिंह नेपाल की तराई में पकड़े गए और जेल में उनकी मौत हो गई तो कुछ का कहना था कि वे कलकत्ता के बंदरगाह पर एक कैदी के रूप में प्रवासी मजदूरों के साथ पानी के जहाज में मॉरीशस जाते देखे गए। जितने मुँह, उतनी बातें! किन पर विश्वास करता। 2010 में एक यात्रा के दौरान मॉरीशस की विद्वान लेखिका प्रो. सुचिता रामदिन ने बताया कि '1858 में आए जहाज में तलवार लेकर भारत से एक क्रांतिकारी भी बंदी के रूप में मॉरीशस आया था। यहाँ खेतों में बनी सेल में कैद रहा। रात में आती हुई उसकी चीखों से पूरा मॉरीशस काँप जाता था। उसकी तलवार आज भी यहाँ संग्रहालय में रखी हुई है।'

इस बूढ़े बरगद ने जो कहानी सुनाई, वह भारतीय इतिहास के पन्नों में भी कहीं दर्ज नहीं है। अब ऐसी कहानियाँ सुनने को नहीं मिलेंगी।

कहते हैं, 1857 का युद्ध सिर्फ राजाओं, नवाबों, जमींदारों, किसानों और मजदूरों ने ही नहीं लड़ा था, उनके साथ क्षेत्र की वनस्पतियों, नदियों, तालाबों, हवाओं, धरती और उसके अंदर मौजूद थिर जल ने भी लड़ा था। संघर्ष के बाद जब बरगद, पीपल और इमली के पेड़ों पर महीनों तक 1857 के सेनानियों की लाशें लटकती रहीं, तब इन्हीं वनस्पतियों ने उन्हें मातृत्व की थपकी दी थी। जगदीशपुर में गढ़ के दक्षिण में खड़ा यह बरगद भी पटना, दानापुर, बक्सर, सासाराम आदि जैसे अनगिनत स्थानों से आए सेनानियों की शरणस्थली भी था और उनकी अंतिम यात्रा का गवाह भी।

अब वह नहीं रहा। नहीं रहा जगदीशपुर में 1857 में हुए संघर्ष का वह आखिरी गवाह! पिछली दो सदियों से वह क्रांतिकारियों की कहानियाँ सुनाता रहता था—चला गया वह सपना, जिसने 1857 का वह युद्ध देखा था...हमेशा के लिए! ओ बहादुर दिल के योद्धा, हमने तुम्हें कंपनी राज के खिलाफ गढ़ की गलियों में लड़ते हुए देखा है... बगावत की वह आखिरी बड़ी मशाल...

1857 का वह मूक सिपाही चला गया और साथ ही ले गया अनगिनत कहानियाँ! इतिहास की वे कहानियाँ, जिन्होंने पूरी सदी का इतिहास चुपचाप अपनी नर्म जड़ों में दफन कर दिया। अब कौन किस्सागो की तरह सुनाएगा, आने वाली संततियों को कि 'एक थे, कुँवर सिंह! जब 80 वर्ष की उम्र में जिंदगियाँ थक जाती हैं, तब उसने तलवार उठाई और घोड़े की लगाम पकड़कर किसानों-मजदूरों के साथ चल पड़ा अंग्रेजी राज का मुकाबला करने...! वह लड़ा, बहुत बहादुरी से लड़ा। अंग्रेज सिपाही कभी उसे पकड़ नहीं पाए। वह था ही इतना बड़ा योद्धा!'

यह सिर्फ कहानी नहीं है, भारतीय राष्ट्र का एक जीवंत इतिहास भी है। यह तीसरी दुनिया के देशों का इतिहास भी है, जो किताबी दस्तावेजों में कम, लोगों की स्मृतियों में अधिक भरा पड़ा है। हाल ही में गुजरे पेरू के मशहूर लेखक मारियो वार्गास ल्योसा के किस्सागो की तरह, जिसकी स्मृतियों में आदिवासी समूह की अनगिनत अनसुनी कहानियाँ किसी इतिहास से कम नहीं हैं।

इतिहास बनती ऐसी अनगिनत कहानियाँ बक्सर-जगदीशपुर-सासाराम और भारत देश के ग्रामीण क्षेत्रों और कैमूर की पहाड़ियों में बिखरी पड़ी हैं। जगदीशपुर गढ़ के इस बूढ़े बरगद का जाना इतिहास के एक कथावचक का जाना भी है, जिसके समूह की स्मृतियों में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास की अनगिनत कहानियाँ छिपी पड़ी हैं। उन्हें खोजना, ढूँढ़ना और उनसे संवाद करना इतिहास के साथ संवाद करना भी है। तब और भी, जब जड़ होता इतिहास, इतिहास के मकबरे में अंतिम साँसें ले रहा हो और उसे जीवंत बनाने वाले बूढ़े बरगद जैसे किस्सागो एक-एक कर धीरे-धीरे जा रहे हों...!

भारत प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में निरंतर रच रहा है इतिहास

भारत कुछ साल से प्रौद्योगिकी के अनेक क्षेत्रों में उपलब्धियों का इतिहास रच रहा है। अंतरिक्ष में मंगल एवं चंद्रमा पर यान उतारने से लेकर उपग्रह प्रक्षेपण में तो भारत इतनी दक्षता हासिल कर चुका है कि आज अनेक विकासशील देश भारत से अपने उपग्रहों का प्रक्षेपण मूल्य चुकाकर करा रहे हैं। भारत अंतरिक्ष में अपना स्टेशन बनाने से लेकर चंद्रमा की सतह पर वैज्ञानिकों सहित 'गगनयान' उतारने की तैयारी में है। भारत ने सेना के लिए उपयोगी ड्रोन से लेकर खेती-किसानी में प्रयोग में लाए जाने वाले स्वदेशी ड्रोन भी बना लिये हैं। सरकार की मदद से ऐसी ड्रोन लखपति दीदियाँ भी सामने आई हैं, जिन्होंने कृषि में अपनी

प्रमोद भार्गव

जन्म : 1956, अटलपुर, शिवपुरी, म.प्र.

शिक्षा : हिंदी साहित्य में स्नातकोत्तर

प्रकाशन : 'प्यासभर पानी', 'पहचाने हुए अजनबी', 'शपथ-पत्र एवं लौटते हुए', 'शहीद बालक', '1857 का लोक-संग्राम और रानी लक्ष्मीबाई' सहित कई पुस्तकें प्रकाशित। वन्य जीवन पर दस लघु-पुस्तिकाएँ प्रकाशित

सम्मान : चंद्रप्रकाश जायसवाल सम्मान, मध्य प्रदेश शासन का रतनलाल जोशी आंचलिक पत्रकारिता पुरस्कार, धर्मवीर भारती सम्मान।

संपर्क : मोबाइल– 9425488224

ई-मेल– pramod.bhargava15@gmail.com

तकनीकी पहचान बनाकर आत्मनिर्भरता के झंडे गाड़ दिए हैं। पिछले एक दशक में भारत ने रक्षा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। लंबी दूरी की अग्नि मिसाइल से लेकर कम दूरी की मिसाइल बनाकर अद्वितीय काम किया है। स्वदेशी तकनीक से युद्धक तेजस विमान विकसित कर लिया है और अब रोबोट सेना के निर्माण में लगी है, जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता से संचालित होगी। एआई को कारगर रूप देने के लिए भारत ने स्वदेशी सुपर कंप्यूटर भी बना लिये हैं। भारत की ये उपलब्धियाँ अनेक देशों के लिए ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा का कारण भी बन रही हैं।

उपग्रह प्रक्षेपण प्रौद्योगिकी

अंतरिक्ष के क्षेत्र में भारत ने दुनिया का सबसे ज्यादा वजनी अमेरिकी उपग्रह 24 दिसंबर, 2025 को पृथ्वी की कक्षा में प्रक्षेपित कर बड़ा इतिहास रचा था। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने अमेरिकी कंपनी एएसटी स्पेस मोबाइल के ब्लूबर्ड ब्लॉक-2 उपग्रह को अंतरिक्ष की कक्षा में स्थापित करके वैश्विक उपलब्धि हासिल की हुई है। इस उपग्रह को स्थापित करने के लिए 520 कि.मी. की वृत्तीय कक्षा का लक्ष्य था। यह 518.5 किलोमीटर की कक्षा में स्थापित हुआ है। अंतर केवल 1.5 कि.मी. का है। इस नाते किसी प्रक्षेपण यान का यह सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन है। इसरो का कहना है कि यह उपग्रह सबसे अधिक वजनी 6,100 किलोग्राम का है। यह भारत की धरती से प्रक्षेपित किए जाने वाला सबसे भारी उपग्रह है।

एलवीएम-3-एम-6 रॉकेट की भारी वजन उठाने की विलक्षण क्षमता के कारण इसे 'बाहुबली' नाम दिया गया है। यह अभियान भविष्य में इंटरनेट कनेक्टिविटी को बदलने वाला साबित होगा। इसका लक्ष्य दुनियाभर में डायरेक्ट-टू-मोबाइल कनेक्टिविटी उपलब्ध कराना है। इसके

जरिए सामान्य स्मार्टफोन पर 4-जी 5-जी वॉयस, वीडियो, मैसेजिंग, स्ट्रीमिंग और हाई स्पीड डेटा स्थानांतरण आसान होगा। ज्ञात हो कि अमेरिका की एएसटी स्पेस मोबाइल कंपनी दुनिया का पहला और एकमात्र स्पेस आधारित सेलुलर ब्रॉडबैंड नेटवर्क बना रही है। इसे स्मार्टफोन से एक्सेस किया जा सकेगा। जिस रॉकेट से इस उपग्रह का प्रक्षेपण किया गया है, उसी से भारतीय गगनयान अभियान को गंतव्य तक पहुँचाया जाएगा। साल 2018 में इसरो ने एक साथ 104 उपग्रह अंतरिक्ष में प्रक्षेपित करके विश्व इतिहास रच दिया था। दुनिया के किसी एक अंतरिक्ष अभियान में इससे पूर्व इतने उपग्रह एक साथ पहले कभी नहीं छोड़े गए थे। प्रक्षेपण तकनीक दुनिया के चंद छह-सात देशों के पास ही है, लेकिन सबसे सस्ती होने के कारण दुनिया के इस तकनीक से महरूम देश अमेरिका, रूस, चीन, जापान का रुख करने की बजाय भारत से अंतरिक्ष व्यापार करने लगे हैं।

सूचना तकनीक का जो भूमंडलीय विस्तार हुआ है, उसका माध्यम अंतरिक्ष में छोड़े गए उपग्रह ही हैं। टीवी चैनलों पर कार्यक्रमों का प्रसारण भी उपग्रहों के जरिए होता है। इंटरनेट पर वेबसाइट, फेसबुक, ट्विटर, ब्लॉग और व्हाट्सएप की रंगीन दुनिया व संवाद संप्रेषण बनाए रखने की पृष्ठभूमि में यही उपग्रह हैं। मोबाइल पर वाई-फाई जैसी संचार सुविधाएँ उपग्रह से संचालित होती हैं। अब तो शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, मौसम, आपदा प्रबंधन और प्रतिरक्षा क्षेत्रों में भी उपग्रहों की मदद जरूरी हो गई है। जो रोबोट सैनिक सीमाओं की रखवाली में लगे हैं, वे भी इन्हीं उपग्रहों और सुपर कंप्यूटरों में दर्ज कृत्रिम बुद्धिमत्ता की मदद से संचालित होते हैं। बावजूद अंतरिक्ष संबंधी उपलब्धियों के, दृष्टिगत चुनौतियाँ कम नहीं हैं, क्योंकि हमारे अंतरिक्ष वैज्ञानिकों ने अनेक विपरीत परिस्थितियों और अंतरराष्ट्रीय प्रतिबंधों के चलते जो उपलब्धियाँ हासिल की हैं, वे गर्व करने लायक हैं। गोया, एक समय ऐसा भी था, जब अमेरिका के दबाव में रूस ने क्रायोजेनिक इंजन देने से मना कर दिया था। असल में, प्रक्षेपण यान का यही इंजन वह अश्व-शक्ति है, जो भारी वजन वाले उपग्रहों को अंतरिक्ष में पहुँचाने का काम करती है। फिर, हमारे जीएसएलवी मसलन भू-उपग्रह प्रक्षेपण यान की सफलता की निर्भरता भी इसी इंजन से संभव थी। अब हमारे वैज्ञानिकों ने दृढ़ इच्छा शक्ति का परिचय दिया और स्वदेशी तकनीक के बूते क्रायोजेनिक इंजन विकसित कर लिया। अब इसरो की इस स्वदेशी तकनीक का दुनिया लोहा मान रही है।

इंसान को लेकर उड़ेगा ड्रोन

इंसान को लेकर उड़ने वाला पहला स्वदेशी भारतीय ड्रोन 'वरुण' अस्तित्व में आ गया है। बिना पायलट के उड़ान भरने वाला यह ड्रोन जल्द ही भारतीय नौसेना का हिस्सा बन जाएगा। परीक्षणों में खरा उतरने के बाद इसे समुद्र में तैरते युद्धपोतों पर तैनात किया जाएगा। इस स्टार्टअप को पुणे की 'सागर डिफेंस इंजीनियरिंग' ने निर्मित किया है। इंसान को लादकर आवागमन करने वाला यह ड्रोन रिमोट से संचालित होगा। इसमें चार ऑटो मोड हैं, जो कुछ रोटर खराब होने की हालात में भी निरंतर उड़ते रहने की क्षमता बनाए रखते हैं। जमीन पर इसका परीक्षण हो चुका है। इसकी सौ किलो तक का भार ढोने की क्षमता है। वरुण समुद्र में एक जहाज से दूसरे जहाज तक माल ढुलाई का काम भी करेगा। यह ड्रोन देश के लिए बहुआयामी सफलता का उपयोगी उपकरण बन गया है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भारत ड्रोन महोत्सव के समय कहा था कि 'मेरा सपना है कि देश के हर व्यक्ति के हाथ में ड्रोन हो, स्मार्ट फोन हो और हर घर में समृद्धि की बहार हो।' ड्रोन तकनीक कृषि क्षेत्र को नए पंख दे रही है। इससे छोटे किसानों को ताकत मिल रही है। ड्रोन से पता चल रहा कि किस जमीन पर कितनी और कौन-सी खाद डालनी हैं, मिट्टी में किस चीज की कमी है और कितनी सिंचाई करनी है। अभी तक ये सारे कार्य अंदाज से होते थे, जो कम पैदावार और फसल की बर्बादी का कारण बन रहे थे। 'नमो ड्रोन दीदी' भारत सरकार की एक अभिनव योजना है, जिसके तहत महिला स्व-सहायता समूहों को कृषि में इस्तेमाल के लिए ड्रोन दिए जाते हैं। इस योजना का लक्ष्य ग्रामीण महिलाओं को ड्रोन तकनीक का प्रशिक्षण देकर खेती में उर्वरक और कीटनाशक के छिड़काव के लिए आत्मनिर्भर बनाना है। इस योजना में आजीविका हेतु मिलने वाली 15,000 की आर्थिक मदद से कई दीदियाँ लखपति बन गई हैं।

शुभांशु शुक्ला ने की अंतरिक्ष स्टेशन से खेती-किसानी

भारत अंतरिक्ष में 2035 तक अपना अड्डा बनाने की तैयारी में है। इसे भारतीय अंतरिक्ष स्टेशन कहा जाएगा। इसका पहला मॉड्यूल 2028 में प्रक्षेपित किया जाएगा। इसमें तीन से चार अंतरिक्ष यात्री रह सकेंगे। अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन (आइएसएस) के प्रवासी भारतीय रहे शुभांशु शुक्ला के अनुभवों को इसकी परिकल्पना में शामिल किया जाएगा। भारत की अंतरिक्ष में आत्मनिर्भरता की यह

बड़ी पहल होगी। यही नहीं, भविष्य की सुरक्षित खेती-किसानी के लिए अंतरिक्ष में जो बीज शुभांशु शुक्ला ने बो दिए हैं, वे किसी भी प्रकार के संकटकाल में जीवन का आधार बनेंगे। यह सुनने में आश्चर्य होता है कि अंतरिक्ष लोक में खेती? आखिर कैसे संभव है? मनुष्य धरती का ऐसा प्राणी है, जिसकी विलक्षण बुद्धि नए-नए मौलिक प्रयोग करके धरती के लोगों का जीवन सरल व सुविधाजनक बनाने में लगी है। इसी क्रम में अब अंतरिक्ष में खेती करने का प्रयोग किया जा रहा है। इस अभियान का लक्ष्य इस अंतरिक्ष ठिकाने पर विशेष खाद्य पदार्थ और उनके पोषण संबंधी 60 प्रयोग करना है। इनमें सात इसरो यानी भारतीय अनुसंधान संगठन के हैं।

“भारत के रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) के वैज्ञानिक एक ऐसे मानव सदृश्य अर्थात ह्यूमोनॉइड रोबोट के विकास पर काम कर रहे हैं, जो सैन्य अभियानों में न केवल मानव सैनिकों के सहयोगी का काम करेंगे, बल्कि स्वयं भी युद्ध में भागीदार रहेंगे। इन रोबोट के निर्माण का उद्देश्य दुर्गम क्षेत्रों में लड़ने के लिए तैयार किया जा रहा है, जिससे मानव सैनिकों को रक्त बहाने की जरूरत न पड़े। डीआरडीओ की प्रमुख प्रयोगशाला रिसर्च एंड डेवलपमेंट एस्टेब्लिशमेंट (इंजीनियर्स) इस ह्यूमोनॉइड रोबोट को विकसित करने में लगी है।”

ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त में अंतरिक्ष में जीव-जगत को पैदा करने वाले सभी सूक्ष्म जीवों के रूपों के पूर्व से विचरण करने का विवरण है। वेदों में ब्रह्मांड की यह जानकारी अचंभित करती है। यद्यपि, अब दुनिया के भौतिक विज्ञानी मानने लगे हैं कि अंतरिक्ष और अनंत ब्रह्मांड में विविध रूपों में जीव-जगत व वनस्पतियों का सृजन करने वाले बीजों के सूक्ष्म कण हमेशा विद्यमान रहते हैं। हमारे दिव्य ज्ञानी ऋषियों ने ऋग्वेद के दसवें मंडल के ‘हिरण्यगर्भ’ सूक्त में सृजन के सूक्ष्म जीव को हजारों वर्ष पहले ज्ञात कर लिया था..,

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक असीत।
स दाधार पृथिवीं धामुतेमां कस्मै देवाय हविशा विधेम॥

अर्थात, इस सृष्टि के निर्माण से पहले इसके आदि स्रोत के रूप में हिरण्यगर्भ अत्यंत सूक्ष्म रूप में विद्यमान था। इसी सूक्ष्म से सृष्टि का विस्तार हुआ। इस विशाल सृष्टि के आधारभूत मूल में प्रकृति अत्यंत सूक्ष्म है, जिसे केवल अनुमान से ही जाना जा सकता है। हिरण्यगर्भ में हिरण्य स्वर्ण-सी चमकने वाली ऊर्जा का प्रकाशपुंज है। ‘गर्भ’ से आशय कोख या अंडे से है। यही वह प्राकृतिक अवयव, अंग, बीज या उपकरण हैं, जिनसे संपूर्ण जीव-जगत पैदा होता है।

अंतरिक्ष स्टेशन प्रतिदिन पृथ्वी की 16 बार परिक्रमा करता है। यात्रियों को विभिन्न 16 सूर्योदय और 16 सूर्यास्त देखने का रोमांच और आनंद मिलता है। ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है, सूर्य अनेक हैं। सात दिशाएँ हैं, उनमें नाना सूर्य हैं,

सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः।

ऋग्वेद : 9.114.3

अथर्ववेद में सात विशाल सौर मंडल उल्लेखित हैं..,

यस्मिन् सूर्या अर्पिताः सप्त साकम।

अथर्ववेद : 13.3.10

तैयार हो रही है रोबोट सेना

मनुष्य की सोच असीम संभावनाओं से जुड़ी है। कल्पना से शुरू होने वाले विचार सच्चाई के धरातल पर आकार लेते हैं, तो आँखें हैरान रह जाती हैं। भारत के रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) के वैज्ञानिक एक ऐसे मानव सदृश्य अर्थात ह्यूमोनॉइड रोबोट के विकास पर काम कर रहे हैं, जो सैन्य अभियानों में न केवल मानव सैनिकों के सहयोगी का काम करेंगे, बल्कि स्वयं भी युद्ध में भागीदार रहेंगे। इन रोबोट के निर्माण का उद्देश्य दुर्गम क्षेत्रों में लड़ने के लिए तैयार किया जा रहा है, जिससे मानव सैनिकों को रक्त बहाने की जरूरत न पड़े। डीआरडीओ की प्रमुख प्रयोगशाला रिसर्च एंड डेवलपमेंट एस्टेब्लिशमेंट (इंजीनियर्स) इस ह्यूमोनॉइड रोबोट को विकसित करने में लगी है। इस मानव रोबोट के ऊपरी और निचले शरीर के भाग पृथक-पृथक मानव रूपों में तैयार किए जा रहे हैं। इन पर किए परीक्षणों से ज्ञात हुआ कि यह प्रयोग सफलता की ओर बढ़ रहा है। पुणे में आयोजित नेशनल वर्कशॉप ऑन एडवांस लेग्ड रोबोटिक्स में इस रोबोट को प्रदर्शित भी किया गया है। इस कार्य को आगे बढ़ाने में सेंटर फॉर सिस्टम एंड टेक्नोलॉजी और एडवांस रोबोटिक्स की मदद भी ली जा रही है। पाकिस्तानपरस्त आतंकवादियों के विरुद्ध चले ऑपरेशन सिंदूर के बाद इस अभियान में तेजी आ गई है।

भारत सरकार इस कोशिश में है कि तीनों सेनाओं में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस) से निर्मित रोबोटिक हथियारों की संख्या बढ़ा दी जाए। इस नाते एक महत्वाकांक्षी रक्षा परियोजना की शुरुआत की गई है। इस परियोजना का लक्ष्य मानवरहित टैंक, जलपोत, स्वचालित राइफल और रोबो आर्मी तक खड़ी की जाने की तैयारी है। हवाईयानों को भी रोबोटिक हथियारों से सक्षम बनाया जाएगा। यह परियोजना जब क्रियान्वित हो जाएगी तब भारत की थल, जल और वायु सेनाएँ युद्ध लड़ने के लिए नई तकनीक से सक्षम हो जाएँगी। टाटा संस के प्रमुख एन. चंद्रशेखर की अध्यक्षता वाला एक उच्च स्तरीय समूह इस परियोजना को अंतिम रूप दे रहा है। इसमें भारतीय रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) भी सहयोग कर रहा है। दरअसल, भविष्य के युद्धों में रोबोट और मानव रहित हथियार ही ज्यादा उपयोग में लाये जाएँगे। जैसे कि हम अमेरिका-इजरायल और ईरान युद्ध में देख रहे हैं।

अंडमान तथा निकोबार की लोककथाओं में अभिव्यक्त आस्था और विश्वास

कहानी कहने-सुनने की प्रथा और परंपरा हर मानव-समुदाय में रही है। लोक-प्रचलित मौखिक कहानियाँ लोक कथा के अंतर्गत आती हैं। इनका प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन होता है, लेकिन इसके साथ ही शिक्षा, उपदेश, नीति, धर्म आदि गौण रूप में जुड़े रहते हैं। लोक कथा जीवन के विविध धागों से बुनी होने के कारण जीवन के विभिन्न पहलुओं को समाहित किए रहती है। सुख-दुख, आशा-निराशा, आस्था-विश्वास, प्रेम-शृंगार, नीति-सदाचार आदि विषयों से संबद्ध लोक

डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी

जन्म : 01 अक्तूबर, 1959, कुशीनगर, उत्तर प्रदेश

शिक्षा : हिंदी में एम.ए., पी-एच.डी.

संप्रति : सेवानिवृत्त अध्यक्ष, हिंदी विभाग, जवाहर लाल नेहरू राजकीय महाविद्यालय, पोर्ट ब्लेयर, (विजय पुरम) अंडमान। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन।

प्रकाशन : कविता, कहानी, आलोचना, लोककथा आदि पर 38 पुस्तकें प्रकाशित। इनके अलावा, चालीस पुस्तकों में सहलेखन।

सम्मान : विश्व हिंदी सम्मान, मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी का 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आलोचना' पुरस्कार। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का 'रामविलास शर्मा सर्जना पुरस्कार', विद्या वाचस्पति और विद्या वारिधि की मानद उपाधियों सहित अन्य पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त।

संपर्क : मोबाइल– 9434286189

ईमेल– tripathivyasmani@gmail.com

कथाएँ सुखांतता और मंगलकामना से ओत-प्रोत होती हैं। मानव-मन में उठने वाली भावनाएँ परंपरा के प्रवाह में समूचे जीवन-दर्शन को रूपायित करती हैं। अंडमान तथा निकोबार की आदिम जातियों की लोक कथाओं का भी लगभग यही वैशिष्ट्य है।

अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह में आदिम और आधुनिक, दोनों ही संस्कृतियों के दर्शन होते हैं। यहाँ इन द्वीपों में दो प्रकार के निवासी हैं—मूल निवासी यानी आदिवासी और दूसरे वे लोग, जो भारत के विभिन्न भागों से आकर यहाँ बसे हुए हैं। अंडमान वर्ग में निग्रेटो प्रजाति से संबंधित चार आदिवासी समुदाय हैं—ओंगी, अंडमानी, जारवा और सेंटीनली, जबकि निकोबार वर्ग में मंगोलियन प्रजाति से संबंधित दो प्रकार के आदिवासी हैं—निकोबारी और शोम्पेन। इन छहों आदिवासी समुदायों के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में पृथकता है, किंतु कुछ संदर्भों में समानताएँ भी हैं—जैसे, जंगल में एक जगह से दूसरी जगह भ्रमण करते हुए शिकार और संग्रह द्वारा कंदमूल, फल, मछली, मांस का भक्षण करते हुए जीवन-यापन करना। समुद्र और वन इनकी आजीविका के साधन रहे हैं। इन समुदायों में सेंटीनली को छोड़कर शेष समुदायों की जीवन-शैली में थोड़ा-बहुत परिवर्तन आया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जो आदिम जातियाँ आधुनिकता और भौतिकता के संपर्क में हैं, उनके आचार-विचार और चिंतनधारा में यत्किंचित परिवर्तन स्वाभाविक है, फिर भी उनके जीवन में रची-बसी लोक संवेदनाएँ, लोक कथाएँ और लोकगीत अपनी अक्षुण्णता बनाए रखते हुए उनके जीवन के विविध आयामों, आस्था-विश्वासों को उद्घाटित करने में अपना योगदान देते रहेंगे।

कथा कहने-सुनने की प्रवृत्ति हर मानव समुदाय में होती है, किंतु विषय-वस्तु और शैली में भिन्नता परिवेश के कारण आती है। इसीलिए अलग-अलग परिवेशों और अलग-अलग भाषाओं/ बोलियों की कथाओं का मूल्यांकन एक मानदंड पर नहीं हो सकता,

फिर भी कुछ ऐसे समान तत्व होते हैं, जो सभी कथाओं में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहते हैं। जन्म और उत्पत्ति संबंधी, रूपांतरण संबंधी, उपदेश संबंधी, मनोरंजन और समारोह संबंधी तथा आस्था और विश्वास संबंधी कथाएँ प्रायः सभी समुदायों में मिलती हैं। अंडमान तथा निकोबार की लोक कथाओं में भी इन विषय-वस्तुओं की समाहिती है।

अंडमानी प्रजाति अतीत में पूर्वजों द्वारा किये गए कार्यों का आख्यान लोक कथाओं के माध्यम से नई पीढ़ी से करती रही है। सृष्टि-निर्माण संबंधी पुरातन विश्वास, ईश्वर संबंधी अवधारणा, जीवन-जगत से संबंधित विभिन्न आस्था-विश्वासों की अभिव्यक्ति उनकी लोक कथाओं में हुई है। (संदर्भ—अंडमान तथा निकोबार की लोककथाएँ, डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी, पृष्ठ-15)। सूर्य, चंद्र, तारे तथा आग के उत्पन्न होने संबंधी आख्यान, जीवन की सहजता में आ रहे विघ्नों के कारण और निवारण संबंधी उपाय, शैतानी आत्माओं की शांति के प्रयास आदि अंडमानी लोक कथाओं में स्वाभाविक ढंग से आए हैं। उनकी कथाओं में एक भी ऐसा शब्द नहीं है, जो उनकी अपनी जिंदगी की आवश्यकता से उत्पन्न नहीं हुआ हो। अंडमानी लोक कथाओं के अनुसार उनका ईश्वर 'पुलुगा' है। सृष्टि का निर्माण उसी ने किया है। मानव-सृष्टि में 'तोमो' उसकी प्रथम रचना है। पुलुगा ने तोमो को जीवन-यापन की सारी शिक्षा दी। उसे हर परिस्थिति से निपटने का उपाय बताया। जब वह इस बात से आश्वस्त हो गया कि तोमो जीवन-पथ पर आगे बढ़ने के क्रम में आने वाली हर कठिनाई का सामना करने में सक्षम हो गया है तब उसने उसकी सहचरी के रूप में एक स्त्री का निर्माण किया, जिसका नाम था—चान आ-ए-लेवादी। उन्हीं दोनों से वंश-वृद्धि हुई। तोमो ने अपने समुदाय की भलाई के अनेक कार्य किए। उसने अपने वंशजों को पुलुगा के प्रति वफादार और आज्ञाकारी बने रहने की शिक्षा दी। उसने यह बताया कि पुलुगा यदि प्रसन्न है तो सब मंगल ही मंगल है और यदि वह अप्रसन्न है तब संकट आते हैं। यही कारण है कि यह समुदाय 'पुलुगा' को प्रसन्न रखना आवश्यक मानता है। अच्छे कार्यों और नेक सलाहों के लिए तोमो भी याद किया जाता है। सृष्टि-निर्माण और विकास संबंधी यह कथा पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन है।

निकोबारी लोक कथाओं में जन-जीवन आदिम राग के साथ मौजूद है। इस समुदाय की उत्पत्ति कैसे हुई, इस संबंध में कई लोक कथाएँ निकोबार के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न ढंग से कही-सुनी जाती रही हैं। 'नारियल की उत्पत्ति' कथा में नारियल के उद्भव की कहानी है। 'कैसे पैदा हुए चमगादड़' का उल्लेख इसी शीर्षक की लोक कथा में है। यहाँ तक कि शार्क मछली के जन्म से संबंधित कथा भी निकोबारी समुदाय में कही-सुनी जाती है। रूपांतरण संबंधी अनेक कथाएँ निकोबारी लोक साहित्य की धरोहर हैं। 'काले पत्थर' शीर्षक लोक कथा का सार-संक्षेप यहाँ दिया जा रहा है, ताकि रूपांतरण संबंधी निकोबारी विश्वासों को समझा जा सके—पुलो बॉबी गाँव के कुछ लोग नाव बनाना चाहते थे। अतः लकड़ी काटने के लिए वे जंगल में काफी दूर निकल गए। संयोग से वे ऐसी जगह पहुँच गए, जो निषिद्ध क्षेत्र था। उन्हें बिल्कुल ही ध्यान नहीं था कि उस वर्जित क्षेत्र से लकड़ी काटने पर उनका अनिष्ट हो सकता है। उन्होंने निर्द्वंद्व भाव से मनपसंद लकड़ी काटी। नाव बनाने की कला उन्हें मालूम थी। उसका उपयोग करते हुए उन्होंने इच्छानुकूल नाव बनाई। नाव बन जाने के बाद उन्होंने उसे समुद्र में उतारा। अभी नाव पानी में उतरी ही थी कि अचानक बिजली गिरी। जिन लोगों ने नाव बनाई थी वे काला पत्थर बन गए। वह नौका भी काले पत्थरों में बदल गई। निकोबारी लोगों का विश्वास है कि पुलो बॉबी से लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर वे पत्थर छितराये हुए देखे जा सकते हैं।

अंडमानी लोक कथाओं में भी रूपांतरण संबंधी अनेक कथाएँ मिलती हैं। इस समुदाय का विश्वास है कि सर्वशक्तिमान के कुपित होने अथवा प्रेतात्माओं के कारण रूपांतरण की क्रिया होती रही है। बड़े द्वीप से छोटे-छोटे अनेक द्वीप बनने की एक लोक कथा का सार-संक्षेप यहाँ प्रस्तुत है, ताकि इस समुदाय की मान्यताओं को समझा जा सके—बहुत पहले कोनोरो नामक अंडमानी ने कछुआ पकड़ने के लिए एक जाल बनाया। उसने समुद्र में जगह-जगह जाल डाला, किंतु उसे कछुआ नहीं मिला। डेरा वापस लौटने से पहले अंतिम प्रयास के रूप में उसने फिर थोड़ा और परिश्रम के साथ जाल समुद्र में डाला। इस बार उसे महसूस हुआ कि कोई बड़ा जीव फँसा हो सकता है। उसने जाल को इधर-उधर हिलाया। यह यकीन हो जाने पर कि इसमें कोई बहुत बड़ी मछली फँसी है उसने पूरी ताकत के साथ उसे बाहर खींचना चाहा, लेकिन सफलता नहीं मिली। उसने समुद्र में डुबकी लगाई। मछली के आकार-प्रकार का निरीक्षण किया। फिर सोचा कि अगर मछली की पूँछ में रस्सी बाँध दी जाए तो उसे बाहर निकालना आसान हो जाएगा। पूँछ में रस्सी बाँध कोनोरो जब बाहर निकालने की कोशिश करने लगा तब उस मछली को बहुत गुस्सा आया। क्रोध में भरकर वह कई बार पानी में नीचे गई और कई बार ऊपर आई। अपनी मुक्ति के लिए उसने जो संघर्ष किया उससे पास का बड़ा द्वीप अप्रभावित नहीं रह सका। जितनी बार उस मछली ने उस बड़े द्वीप को धक्का मारा उतनी बार उससे एक भूखंड अलग हुआ। अलग हुए वे ही भूखंड छोटे-छोटे द्वीप बने। उनके साथ ही खाड़ियाँ भी बनती चली गईं। इस तरह, अंडमानी समुदाय की अनेक लोक कथाओं में चट्टानों के निर्माण, रात-दिन का बनना, सूर्य और चंद्र ग्रहण, डुगांग संबंधी अनोखी दास्तानें मौजूद हैं। (संदर्भ—वही, अंडमान तथा निकोबार की लोककथाएँ, डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली)।

सूरज, चाँद और तारों के बारे में निकोबारी आस्था और विश्वास को प्रकट करने वाली अनेक लोककथाएँ हैं। एक लोककथा के

अनुसार, हजारों वर्ष पहले रूपांतरण के क्रम में चाँद सूरज बन गया और सूरज चाँद, जिससे तापमान का संतुलन बिगड़ गया। गरमी बहुत बढ गई। निकोबारी लोगों ने धरती के काफी पास आ गए आकाश को गरमी का कारण माना। उन्होंने धरती और आसमान के बीच लंबा अंतराल बनाने के उद्देश्य से आसमान में लगातार तीर छोड़ने का कार्य तब तक जारी रखा जब तक कि दोनों के बीच काफी दूरी नहीं आ गई। उनलोगों ने आसमान में जो तीर छोड़े थे उनमें से अधिकांश वापस नहीं लौटे। वे सभी तीर ता-चोई के बने हुए थे। वे फटे नहीं। इसके विपरीत, चा-लुओक से बने जो तीर छोड़े गए थे वे आकाश से टकराकर आग की ज्वाला में फट पड़ते थे। उनमें बिजली जैसी चमक पैदा होती थी। निकोबारी समुदाय को विश्वास है कि जो तीर आग की ज्वाला में फटे उनसे ही नक्षत्रों का निर्माण हुआ। वे ही तारे चमकते और लोगों को दिखाई देते हैं।

एक लोककथा के अनुसार, अंडमानी प्रजाति के पुकिकवार समुदाय के लोग बहुत पहले जब वोटाएमी नामक जंगल में रहते थे तब रात नहीं होती थी। इससे उन्हें शिकार करने में सुविधा थी। उन्हीं दिनों ता पेती शिकार के लिए जंगल गया। वहाँ से जिमीकंद, पेड़ से निकलने वाला राल तथा एक रोटो (एक प्रकार की कृमि) लेकर लौटा। उसने अपने परिजनों तथा साथियों को अपने साथ लाई चीजें दिखाने के क्रम में रोटो को अपनी हथेलियों में लेकर मसलना शुरू किया। मसले जाते हुए उस रोटो के करुण क्रंदन से सारा वातावरण गूँज उठा। उसकी चीख इतनी वेदनामयी और भयावह थी कि दिन गायब हो गया। चारों ओर अँधेरा छा गया। इससे शिकार करने तथा भोज्य सामग्री इकट्ठा करने में लोगों को परेशानी होने लगी। अतः वे अँधेरा दूर करने के उपायों पर विचार करने लगे। ता पेती जंगल से जो राल लाया था उसकी मशाल बनाकर सभी ने नाचना-गाना शुरू किया। सबसे पहले कोतारे ने एक गाना गाया। रोशनी नहीं लौटी। बुमु ने गाना गाया, तब भी प्रकाश नहीं लौटा। एक के बाद एक सभी गाना गाते रहे, लेकिन दिन नहीं आया। सबसे बाद में कोनोरो ने गाना गाया। प्रभात हो गया। उसके बाद रात और दिन एक-दूसरे के पीछे बारी-बारी से आने लगे।

लोककथाएँ मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा और उपदेश भी देती हैं। 'पहले चलते थे पेड़' शीर्षक लोककथा के अनुसार, निकोबारी मान्यता है कि पहले पेड़ चलते थे। लोगों की वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया करते थे, किंतु एक बार ऐसा हुआ कि लोगों ने उस पर काफी सामान लादकर गंतव्य तक पहुँचाने का निर्देश दिया। बोझ इतना भारी था कि उसे चलने में कठिनाई हो रही थी, फिर भी वह गंतव्य की ओर गतिशील था। पेड़ के पीछे-पीछे चल रहे लोगों को पेड़ की असमर्थता पर हँसी आ गई। वे उसका मखौल उड़ाने लगे। इस पर पेड़ को क्रोध आ गया। उसने चलना बंद कर दिया। तभी से पेड़ों का चलना रुका हुआ है। इससे यह संदेश मिलता है कि व्यंग्यात्मक उपहास किसी को भी बुरा लग सकता है।

मानव-सभ्यता के विकास में आग की खोज, उसकी उपयोगिता और सुरक्षा से संबंधित अनेक कहानियाँ हैं। हमने अपने बचपन में देखा था कि जब हर घर में माचिस उपलब्ध नहीं थी, तब लोग अपने-अपने घरों में आग जलाकर रखते थे। बुझने नहीं देते थे। अंडमानी लोक कथा 'लुराटुट संकट-मोचक बना' में भी आग के लिए संघर्ष और उसे बचाकर रखने की बात इस प्रकार है—पुराने जमाने में कोलवोत के देहावसान के बाद उसके वंशजों के क्रिया-कलाप से पुलुगा (ईश्वर) नाराज हो गया। उसने जल प्लावन भेज दिया। इससे जानमाल की क्षति के साथ ही आग भी बुझ गई। जीवित बचे लोगों के सामने अन्य समस्याओं के साथ आग की भी समस्या उत्पन्न हो गई। इसी बीच, उनका एक मरा हुआ मित्र पक्षी के रूप में प्रकट हुआ, जिसका नाम लुराटुट था। उसने आग उपलब्ध कराने का बीड़ा उठाया। अपनी बुद्धि और तरकीब से पुलुगा के पास पहुँचा, जिसके पास आग सुरक्षित थी। पुलुगा ने क्रोध से उस पर जलती हुई लुकाठी फेंक दी। संयोग से वह लुकाठी वहाँ गिरी, जहाँ अंडमानी लोग बैठे थे। सभी प्रसन्न हो गए। उन्होंने लुराटुट के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन के साथ यह निर्णय लिया कि आग कभी बुझने नहीं दी जाएगी। (संदर्भ—वही, अंडमान तथा निकोबार की लोककथाएँ, डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी)। इसीलिए अंडमानी प्रजाति के यहाँ आग हमेशा जलाए रखने का विधान रहा है।

अंडमानी लोगों का मानना है कि पुलुगा का क्रोधित होना अनिष्टकारी है। उनके अनुसार दो तरह की शैतानी शक्तियाँ हैं, जो समुद्र और जंगल में निवास करती हैं। इनके अलावा, जिरमू नामक एक ऐसी भी शैतानी शक्ति है, जिसका निवास हवा में है। इसलिए इनके यहाँ जंगल में अकेला रहने की मनाही है। भोजन ढँककर रखा जाता है, ताकि शैतानी शक्ति उसे छू न सके। ये लोग शिकार पर जाते समय नौका के ऊपरी भाग पर पानी का छिड़काव तथा सकुशल वापसी के लिए पूर्वजों से प्रार्थना करते हैं। निकोबारी जीवन में भी कई तरह की रूढ़ मान्यताएँ, अंधविश्वास और लोकाचार प्रचलित हैं। आत्मा के संबंध में इनकी अपनी सोच है। गर्भधारण संबंधी विश्वास और मान्यताएँ हैं। मछली पकड़ने जाते समय क्या खाने योग्य है, क्या नहीं, इससे संबंधित आस्थाएँ हैं। कुत्तों के भौंकने को लेकर कई तरह के विचार हैं। ग्रहण लगने से संबंधित इनके अपने चिंतन हैं। 'वे लोग और बौनों की दुनिया' नामक लोककथा में पाताल लोक की कल्पना है।

लोककथाएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती हैं। इस प्रक्रिया में समयानुसार उनमें यत्किंचित परिवर्तन और परिवर्धन संभव है, किंतु अविनाशी होने के कारण वे समाप्त नहीं हो सकतीं। लोककथाओं में संचित जीवन-मूल्य, युग-बोध, शिक्षा और संदेश हर आगामी पीढ़ी के विकास में अपने ढंग से सहायक सिद्ध होते रहेंगे।

नारी अस्मिता के उन्नायक राजा राममोहन राय

भारतीय समाज के आधुनिक पुनर्जागरण का इतिहास जिनकी चर्चा के बिना अधूरा रह जाता है, भारतीय पुनर्जागरण के उस अग्रदूत का नाम है—राजा राममोहन राय। नारी अस्मिता के संरक्षक, सामाजिक क्रांति के उन्नायक तथा आधुनिक भारत के निर्माता के रूप में उनका नाम भारतीय इतिहास में अमर है। उन्नीसवीं शताब्दी का प्रारंभिक काल भारतीय समाज के इतिहास में एक महत्वपूर्ण संक्रमण काल के रूप में देखा जाता है। इस समय भारतीय समाज राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर गहरे परिवर्तन से गुजर रहा था। एक ओर मुगल साम्राज्य का पतन हो चुका था और अंग्रेजी सत्ता धीरे-धीरे भारत में अपनी जड़ें जमा रही थी, वहीं दूसरी ओर, भारतीय समाज अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों से ग्रस्त था। इन कुरीतियों का सबसे अधिक दुष्प्रभाव स्त्रियों पर पड़ता था। स्त्रियों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। बाल विवाह, सती प्रथा, विधवाओं का अमानवीय जीवन, स्त्री शिक्षा का अभाव और सामाजिक असमानता जैसी सामाजिक विकृतियाँ समाज को खोखला बना रही थीं। ऐसे विकृत सामाजिक दौर में राजा राममोहन राय ने इन कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ा और भारतीय समाज में एक नई चेतना का संचार किया।

29 मई, 1772 ई. को बंगाल के हुगली जिले के राधानगर में एक ब्राह्मण परिवार में जन्मे राममोहन राय, रमाकांत राय और तारिणी देवी के कनिष्ठ पुत्र थे। यह 08 अप्रैल, 1810 ई. का दिन था। उन्होंने अपने बड़े भाई जगमोहन की मृत्यु पर अपनी भाभी को सती प्रथा की भेंट चढ़ते देखा तो उनका मन उद्वेलित हो उठा। उन्होंने तत्क्षण यह संकल्प लिया कि वे इस घृणित दानवी प्रथा का उन्मूलन करेंगे। पति की चिता पर जिंदा जला देने की यह प्रथा भारत के कुछ हिस्सों में, विशेषतः बंगाल में प्रचलित थी; यद्यपि, इसका कोई शास्त्रीय आधार दृष्टिगत नहीं होता।

राममोहन ने वाराणसी में रहकर संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की थी तथा वेदों, उपनिषदों तथा अन्य शास्त्रों का गहन अध्ययन किया था, अतः उन्होंने इस अशास्त्रीय, अमानवीय कृत्य के विरुद्ध युद्ध छेड़ा। 1818 ई. में उन्होंने इस सामाजिक विकृति के उन्मूलन के लिए आंदोलन प्रारंभ कर दिया। उनके आंदोलन के कई रूप थे। वे न केवल लोगों को इस कुरीति को रोकने के लिए समझाते, बल्कि बाँग्ला, अंग्रेजी भाषाओं में पुस्तिकाएँ प्रकाशित कर मुफ्त वितरण करवाते। पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखकर आम जनमानस में जागृति फैलाते। वे जब कभी भी सती होने की घटना सुनते तो अकसर श्मशान जाते और लोगों को ऐसा करने से रोकते। सती प्रथा के विरोध में राय की पहली पुस्तिका, जो मूलतः बाँग्ला में थी, सन् 1818 ई. में प्रकाशित की गई। अंग्रेजी में भी उसका अनुवाद किया गया, जिसका शीर्षक था—'A conference between an

डॉ. शैलेश कुमार मिश्र

शिक्षा : एम.ए. (संस्कृत एवं हिंदी), पी-एच.डी.

संप्रति : असिस्टेंट प्रोफेसर, राजकीय संस्कृत कॉलेज, राँची (विनोबा भावे विश्वविद्यालय), तीस वर्षों से इलेक्ट्रॉनिक एवं प्रिंट मीडिया में सृजनात्मक सक्रियता।

प्रकाशन : सात पुस्तकें एवं छह संपादित ग्रंथ प्रकाशित। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से 'शेष कथन' एवं 'पारावार के पार' शीर्षक दो पुस्तकों का अनुवाद।

सम्मान : दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत, भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पुणे द्वारा पुरस्कृत।

संपर्क : मोबाइल— 7541933637

ईमेल— shail.vbu@gmail.com

advocate for and an opponent of the practice of burning widows alive' । राय ने इसमें यह प्रदर्शित किया कि शास्त्रों में कहीं भी सती प्रथा का उल्लेख नहीं है। इस पुस्तिका में उल्लिखित अपने मत को विस्तृत रूप से प्रदर्शित करने के लिए 1820 ई. में एक दूसरी पुस्तिका—'A second conference between an advocate for and an opponent of the practice of burning widows alive' प्रकाशित कर भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स की पत्नी ('Most noble Marchioness of Hastings') को समर्पित की। यह भी मूलतः बाँग्ला में तथा अंग्रेजी में अनूदित थी। इसके द्वारा राममोहन राय गवर्नर जनरल को उनकी पत्नी के माध्यम से सती प्रथा के उन्मूलन के लिए प्रेरित करना चाहते थे।

सती से संबंधित तीसरा लेख 1830 ई. में 'Abstract of the Arguments regarding the burning of widows considered as religious rite' आया। राममोहन राय ने अपने लेखन के माध्यम से सती के खिलाफ आंदोलन छेड़ा। इसी क्रम में अपनी बाँग्ला पत्रिका, 'संवाद कौमुदी' के माध्यम से सती विरोधी अभियान का महत्व जन-जन के हृदय तक पहुँचाने की चेष्टा की। इस पत्रिका में सती प्रथा की जमकर आलोचना करते हुए राय ने जनजागरूकता फैलाई। 1818 ई. में उन्होंने कलकत्ता के प्रगतिशील हिंदू नागरिकों द्वारा हस्ताक्षरित आवेदन तत्कालीन गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स को सौंपा। यद्यपि, रूढ़िवादी हिंदुओं ने राय के इस कदम का घोर विरोध किया, लेकिन वे इस प्रथा की शास्त्रीय व्याख्या नहीं कर पाए। अंततः, राय अपने अभियान में सफल हुए और सती प्रथा के विरुद्ध उनके तर्क तथा उनके द्वारा स्थापित शास्त्रीय प्रमाण इस कुप्रथा को प्रतिबंधित करने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। 04 दिसंबर, 1829 ई. को पारित सती अधिनियम 1829 के द्वारा सती प्रथा को दंडनीय अपराध घोषित कर दिया गया। सदियों से कट्टरपंथियों द्वारा पोषित इस दानवी प्रथा से उत्पीड़ित भारतीय नारी को न्याय मिला। भारतीय नारियों के सामाजिक उन्नयन के इतिहास में यह मील का पत्थर था।

राममोहन राय ने विधवाओं को न केवल सती प्रथा के इस भयानक उत्पीड़न से बचाया, बल्कि उनके जीवन को बेहतर बनाने के लिए संघर्ष करते हुए विधवा विवाह के लिए समाज में जागरूकता फैलाई। हालाँकि, विधवा विवाह आंदोलन को व्यापक रूप से आगे बढ़ाने का श्रेय पं. ईश्वर चंद्र विद्यासागर को जाता है, लेकिन इसके लिए सामाजिक आधारभूमि तैयार करने में राजा राममोहन राय की महत्वपूर्ण भूमिका थी। राजा राममोहन राय ने यह तर्क दिया कि विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार होना चाहिए। उन्होंने यह बताया कि हिंदू धर्मग्रंथों में कहीं भी विधवा विवाह का स्पष्ट निषेध नहीं है। वेदों में तो पति की मृत्यु के बाद स्त्री के पुनर्विवाह का स्पष्ट संकेत मिलता है। पति नारी का सौभाग्य होता है, इसलिए पतिरहित वैधव्य जीवन नारी के लिए अभिशाप होता है। वैदिक काल में एक विधवा नारी अपने देवर से विवाह संबंध स्थापित कर सकती थी और सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकती थी।

को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ।

(*ऋग्वेद*—10.40.2)

ऋग्वेद (10/18/8) तैत्तिरीय आरण्यक (6/1/3) तथा अथर्ववेद (18/3/2) में इस बात का उल्लेख है कि पत्नी को मृत पति के पार्श्व में चिता पर लिटा दिया जाता था और फिर उसका देवर या कोई सपिंडक उसे कहता था, 'हे नारी! उठो, तू जिसके साथ लेटी है वह गतासु (निष्प्राण) है। तू इस जीवलोक में आ। अपने गतासु पति को त्याग कर उस व्यक्ति से विवाह कर, जो तेरा पाणिग्रहण करे और तुझसे विवाह के लिए इच्छुक हो'—

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुर्मेतम् उपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वभि संबभूथ॥

(*ऋग्वेद*—10/18/8)

उनके क्रांतिकारी विचारों और सामाजिक आंदोलन के परिणामस्वरूप ही आगे चलकर 1856 में Hindu Widows' Remarriage Act, 1856 पारित हुआ। नारियों के सामाजिक, शैक्षिक तथा आर्थिक उन्नयन को लेकर राममोहन राय हमेशा प्रयत्नशील रहे। सदियों से चली आ रही बाल-विवाह एवं बहुविवाह की प्रथा के उन्मूलन के लिए भी उन्होंने संघर्ष किया।

तत्कालीन समाज में यह धारणा प्रचलित थी कि स्त्रियों को शिक्षा देना आवश्यक नहीं है। राजा राममोहन राय ने इस विचार का विरोध किया और स्त्री शिक्षा को समाज के विकास के लिए अनिवार्य बताया। उनका मानना था कि जब तक स्त्रियाँ शिक्षित नहीं होंगी, तब तक समाज का वास्तविक विकास संभव नहीं है। उन्होंने आधुनिक शिक्षा प्रणाली के विकास का समर्थन किया और कई शिक्षण संस्थानों की स्थापना में योगदान दिया।

राजा राममोहन राय ने स्त्रियों के संपत्ति के अधिकारों का भी समर्थन किया। उन्होंने अपने लेख 'Brief Remarks Regarding Modern Encroachments on the Ancient Rights of Females According to the Hindu Law of Inheritance' (1822) में वेदों, स्मृतियों तथा अन्य शास्त्रों का हवाला देते हुए यह तर्क दिया कि प्राचीन हिंदू समाज में स्त्रियों को संपत्ति के अधिकार प्राप्त थे, जो कालांतर में पितृसत्तात्मक कुरीतियों के कारण छीन लिये गए। उनका मानना था कि स्त्रियों को आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्त बनाना समाज के विकास के लिए आवश्यक है।

भारतीय समाज सुधार आंदोलन के इतिहास में राजा राममोहन राय का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष करके भारतीय समाज में नई चेतना का संचार किया और आगे आने वाले समाज सुधार आंदोलनों के लिए वैचारिक आधार भी तैयार किया। सती प्रथा के उन्मूलन, स्त्रियों की शैक्षिक, आर्थिक स्थिति सुधारने के प्रयास, विधवा विवाह के पक्ष में उनके विचारों ने भारतीय समाज को आधुनिकता की दिशा में अग्रसर किया। भारतीय नारी के जीवन-मूल्यों के अनन्य संरक्षक, नारी अस्मिता के उन्नायक राजा राममोहन राय अपने इन्हीं क्रांतिकारी प्रयासों के कारण भारतीय सामाजिक पुनर्जागरण के अग्रदूत के रूप में स्मरणीय हैं।

विश्व संगीत दिवस
आत्मा की खोज से रस और रंजकता तक

भारतीय संगीत सदैव अपनी आत्मा को खोजता रहा है, लेकिन समय, समाज और वातावरण, कलाओं को भी अछूता कहाँ छोड़ते हैं! संस्कृतियों के आगमन ने कलाओं को प्रभावित किया और संगीत मंदिरों के आँगन से निकलकर बादशाहों के दरबारों में विराजमान हुआ। गोपाल नायक जैसे सिद्ध गायक को अमीर खुसरो की कलात्मक चतुराई के हाथों हार माननी पड़ी, लेकिन राजा मानसिंह तोमर ने प्रबंध गान को परिष्कृत कर ध्रुपद को जन्म दिया और तानसेन तथा बैजू ने ध्रुपद को स्वर्णिम काल तक पहुँचाया। दरबारों में नोम-तोम के आलाप और लयकारी की गूँज से इतर स्वामी हरिदास की संगीत तपस्या आत्मा की खोज

रघुवीर सिंह

जन्म : बरेली, उत्तर प्रदेश

शिक्षा : एम.ए. (संगीत) एवं एम.जे.

प्रकाशन : कला पत्रकार एवं संगीत अध्येता। *जनसत्ता, अमर उजाला, दैनिक भास्कर, राजस्थान पत्रिका, दैनिक जागरण* समेत देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कला आलेख, धार्मिक लेख, साक्षात्कार एवं कहानियाँ प्रकाशित। आकाशवाणी बरेली/रामपुर से कार्यक्रमों का प्रसारण।

सम्मान : संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार से हिंदुस्तानी संगीत गायन में सीनियर फेलोशिप। मास्टर मदन स्मृति संगीत पुरस्कार एवं लायंस क्लब का युवा पत्रकार सम्मान।

संपर्क : मोबाइल– 8595885326

ईमेल– raghuvirc@hotmail.com

करती रही, लेकिन जब हिंदुस्तानी संगीत में ख्याल ने शृंगारिक रंग भरने शुरू किए तो भारतीय संगीत में ध्रुपद के आध्यात्मिक भाव पीछे छूटने लगे। हालाँकि, शास्त्रीय गायकों ने नित नए प्रयोग किए और अपनी-अपनी अलग शैलियाँ विकसित कीं, जिन्होंने संगीत घरानों की शक्ल ली। वादन संगीत में तारों की गूँज के लिए सितार और उसके साथ ताल की थाप के लिए तबले को अमीर खुसरो ने जन्म दिया।

कैसे जन्मा भारतीय संगीत

कहते हैं, जब सृष्टि बनी, तभी संगीत भी अस्तित्व में आ गया। सत, चित, आनंद स्वरूप परमब्रह्म ने अपनी त्रिगुणात्मक प्रकृति के माध्यम से सृष्टि की रचना की। ब्रह्म के आनंद स्वरूप होने के कारण ही संगीत की उत्पत्ति आनंद तत्व से हुई। इसीलिए संगीत के आधार तत्व 'नाद' को 'ब्रह्मरूप' माना गया। मान्यता है कि ब्रह्मा-विष्णु पराशक्ति तथा माहेश्वर नाद रूप हैं। जिस प्रकार मिट्टी या पत्थर से प्रतिमा, रंग-रोगन से चित्र और ईंट से भवन तैयार होते हैं, उसी प्रकार संगीत का उपादान नाद है और नाद से ही संगीत की सृष्टि हुई है। वास्तव में, संगीत नाद का विज्ञान है।

ध्रुपद की लयकारी

भारतीय संगीत की परंपरा सामवेद से जुड़ी है। प्राचीन धर्म ग्रंथों में लगभग सौ प्रकार के प्रबंध गीतों का उल्लेख है, जिनमें एक प्रकार 'ध्रुव' भी है। इसी 'ध्रुव' नामक प्रबंध गीत शैली का विकसित रूप ध्रुवपद अथवा ध्रुपद है। वैदिक काल से लेकर पाँचवीं शताब्दी ईसवी से पहले तक प्रबंध गीत अस्तित्व में रहा और कुछ नवाचार के साथ 13वीं शताब्दी तक भारतीय संगीत का स्वरूप आध्यात्मिक बना रहा। कला के उदार संरक्षक ग्वालियर के महाराजा मानसिंह तोमर ने पारंपरिक संस्कृत छंदों को ब्रजभाषा में गीतों से प्रतिस्थापित कर अत्यधिक लंबे पदों को छोटा किया और गीत के साहित्य में

पौराणिक आख्यान, दैवीय आराधना, राजाओं की प्रशस्ति, प्रकृति वर्णन तथा सामाजिक उत्सवों आदि को रखा। उन्होंने तीन खंडों के गीतों की रचना की—विष्णु पद (भगवान विष्णु की स्तुति में गीत), ध्रुवपद और होरी एवं धमार यानी होली के रंग उत्सव से जुड़े गीत। इसी युग में स्वामी हरिदास और बैजनाथ मिश्र यानी नायक बैजू जैसी महान शख्सियतें ध्रुपद की मौजूदा शैली की मुख्य प्रतिपादक मानी जाती हैं। बैजू के सुर-संसार से धमार गायकी और ताल निकली और

“पंडित पन्नालाल घोष और पंडित हरिप्रसाद चौरसिया की बाँसुरी तथा उस्ताद बिस्मिल्लाह खान की शहनाई ने भी आजाद भारत में खूब धूम मचाई। सारंगी में उस्ताद साबरी खान और वायलिन में एन. राजम सिरमौर बनी। रुद्रवीणा की झंकार को उस्ताद बहाउद्दीन डागर अनवरत बनाये हुए हैं, हालाँकि अन्नपूर्णा देवी के जाने के बाद सुरबहार की बहारें थम गईं।”

उन्होंने गुर्जरी तोड़ी और मंगल गुर्जरी जैसे अनेक राग बनाए। स्वामी हरिदास के शिष्य तानसेन उस समय के सबसे प्रसिद्ध कलाकार बनकर उभरे। कहा जाता है कि तानसेन की पहल पर रबाब (मध्य एशिया का एक साज़) को पारंपरिक भारतीय तार वाले वाद्य वीणा के साथ मिलाकर सरोद बनाया गया। उन्होंने मियाँ मल्हार, मियाँ की तोड़ी, मियाँ की सारंग, दरबारी कान्हड़ा और रागेश्वरी जैसे कई प्रसिद्ध और लोकप्रिय राग भी बनाए। बाद में, डागर घराने के उस्तादों और शागिर्दों ने जिस समर्पण, त्याग और तपस्या से इस पुरानी धरोहर को अभी तक सहेजे रखा है, वह काबिले-तारीफ है। उस्ताद वासिफुद्दीन डागर, पंडित उमाकांत गुंदेचा, पंडित उदय भवलकर आदि ने ध्रुपद की लयकारी को जारी रखा है।

आजादी के बाद हिंदुस्तानी संगीत

पिछली सदी के पूर्वार्द्ध में जब अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ पूरे देश में स्वतंत्रता के महान आंदोलन की आँधी चली और राजे-रजवाड़े कमजोर पड़ने लगे, तो शास्त्रीय संगीत भी उनके दरबारों से बाहर निकला। पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर और पंडित विष्णु नारायण भातखंडे जैसे संगीत मनीषियों ने शास्त्र और क्रिया पक्ष पर काम किया और आसान-सी स्वर व ताल लिपि पद्धतियाँ देकर आम रसिकों को शास्त्रीय संगीत की तकनीकी बारीकियों से रू-ब-रू कराया। उसी समय किराना घराने के उस्ताद अब्दुल वहीद खान और उस्ताद अब्दुल करीम खान ने शास्त्रीय गायन में धीर-गंभीर और संवेदनशील सुर छेड़े। पंडित ओंकारनाथ ठाकुर ने संगीत रस की प्रधानता पर गंभीर चिंतन कर एक ऐसी राह निकाली, जिस पर चलकर पंडित कुमार गंधर्व, पंडित जसराज, पंडित भीमसेन जोशी और विदुषी किशोरी अमोनकर जैसे रससिद्ध गायक-गायिका सामने आए। उस्ताद अमीर खान ने विलंबित लय को इतना गाढ़ दिया कि एक नई ‘अमीरख़ानी लय’ पैदा हो गई। पंडित जसराज ने भक्तिभाव केंद्रित शब्दावली को चुनकर अनूठी गायकी में इस तरह पेश किया, मानो ख्याल गायकी भक्ति के लिए बनी हो। गंगूबाई हंगल, वीणा सहस्रबुद्धे, बेगम परवीन सुल्ताना और अश्विनी भिडे देशपांडे ने भी ख्याल गायकी में अभिनव प्रयोग किए। उस्ताद बड़े गुलाम अली खान ने पंजाब अंग की खासियतों से ठुमरी में एक अलग रंगीनी भरी। गिरिजा देवी, बेगम अख्तर, शोभा गुर्टू, शुभा मुद्गल ने ठुमरी को उरूज पर पहुँचाया।

संगीत वादन की दुनिया को मैहर के बाबा उस्ताद अलाउद्दीन खान ने समृद्ध किया। उन्होंने सितार के कई सितारे तैयार किए, तो सरोद, वायलिन और सुरबहार को भी ध्रुवतारे दिए। भारतीय संगीत को संसार के नक्शे पर सम्मानजनक स्थान दिलाने में उनके प्रधान शिष्य पंडित रवि शंकर के अथक प्रयासों का कोई जोड़ नहीं। उन्होंने मंच के सौंदर्य-बोध यानी बैठने का ढंग, उचित रोशनी, अच्छा कारपेट, अच्छा साउंड सिस्टम पर भी ध्यान केंद्रित किया। भारतीय समाज में कुलीन घरों के बच्चों का संगीत सीखना पहले अच्छा नहीं माना जाता था। यह रवि शंकर की लोकप्रियता और ग्लैमर ही था, जिसने समाज का नजरिया बदला और अब बच्चों को संगीत की तालीम दिलाना गर्व की बात माना जाने लगा है। आज अभिभावक बच्चों को ‘सारेगामापा’, ‘इंडियन आइडल’, ‘इंडियाज गॉट टैलेंट’, ‘सुपरस्टार सिंगर’, ‘भारत का अमृत कलश’ और ‘वाह उस्ताद’ जैसे संगीत रियलिटी शो में भेजकर खुद को गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं। सितार में दूसरी क्रांति उस्ताद विलायत खान ने की। उनका सितार गाने लगा, जिसका नशा युवा पीढ़ी पर बढ़ता चला गया। उस्ताद अब्दुल हलीम जाफर खान के सितार की तरंगें भी सिर चढ़कर बोलीं। संगीत को शास्त्रीयता की अतल गहराइयों में पहुँचाने का जैसा प्रयास उस्ताद अली अकबर खान ने किया, उसका कोई मुकाबला नहीं। बाद की पीढ़ी में उनकी कुछ क्षतिपूर्ति उस्ताद अमजद अली खान के सरोद से हुई। अमजद अली, रवि शंकर के बाद शास्त्रीय संगीत के दूसरे ‘शो-मैन’ के रूप में उभरे। संतूर ने भी भारी इज्जत कमाई। पंडित शिवकुमार शर्मा और पंडित भजन सोपोरी के प्रयासों के अंतहीन संघर्षों का ही नतीजा है कि नई पीढ़ी में अच्छा संतूर बजाने वाले अब कई वादक सामने आ रहे हैं। पंडित पन्नालाल घोष और पंडित हरिप्रसाद चौरसिया की बाँसुरी तथा उस्ताद बिस्मिल्लाह खान की शहनाई ने भी आजाद भारत में खूब धूम मचाई। सारंगी में उस्ताद साबरी खान और वायलिन में एन. राजम सिरमौर बनीं। रुद्रवीणा की झंकार को उस्ताद बहाउद्दीन डागर अनवरत बनाये हुए हैं, हालाँकि अन्नपूर्णा देवी के जाने के बाद सुरबहार की बहारें थम गईं। पखावज की ताल को अखिलेश गुंदेचा और रोमन दास सँभाले हुए हैं। तबले की थाप को उस्ताद अल्ला रक्खा और उस्ताद जाकिर हुसैन ने विदेशों तक पहुँचाया, तो उस्ताद अहमद जान थिरकवा, पंडित अनोखे लाल मिश्र,

पंडित सामता प्रसाद, पंडित किशन महाराज, उस्ताद अकरम खान और अनुराधा पाल ने देश में छाप छोड़ी।

कर्नाटक संगीत की तान

कर्नाटक संगीत की बात चलते ही सबसे पहले जो चेहरा सामने आता है, वह है—पंडित बाल मुरलीकृष्णन का। उन्होंने कर्नाटक संगीत में रंजकता भरी। भारत रत्न से सम्मानित होने वाली पहली शास्त्रीय संगीतकार एम.एस. सुब्बुलक्ष्मी ने कर्नाटक संगीत को भक्ति रस में डुबोया। वर्तमान में टी.एम. कृष्णा, संजय सुब्रमण्यन, रंजनी-गायत्री बहनें, अभिषेक रघुराम और नित्याश्री महादेवन नित नए प्रयोगों से इस रंजकता को बनाये हुए हैं। वादन संगीत में प्रसिद्ध घटम वादक टी.एच. विनायकराम 'विक्कू' और वायलिन में अक्कारई बहनें (अक्कारई शुभलक्ष्मी और अक्कारई सोरनालता), एल. सुब्रमण्यम एवं आर.के. श्रीरामकुमार सुर लहरियाँ बिखेर रहे हैं। कर्नाटक संगीत ने उत्तर भारत के दरबारी कान्हड़ा और परज जैसे रागों को अपनाया। दूसरी तरफ, हंसध्वनि, आभोगी, किरवानी और चारुकेशी जैसे कर्नाटक संगीत के कई रागों का हिंदुस्तानी संगीत में प्रयोग होने लगा।

लोक से जुड़ा संगीत

शास्त्र की असली परीक्षा लोक में ही होती है। संगीत भी शास्त्र के साथ जब लोक में आया तो रस और रंजकता के लिए उसमें कुछ परिवर्तन हुए। नतीजतन, होली जैसे पर्व पर उत्तराखंड की बैठकी और खड़ी होली अस्तित्व में आई। छठ गीतों और मैथिली-भोजपुरी लोक गीतों के लिए बिहार की शारदा सिन्हा, कजरी, होरी और अवधी लोक गायन में उत्तर प्रदेश की मालिनी अवस्थी, पंडवानी गायन में छत्तीसगढ़ की तीजन बाई, मांड और सूफी लोक गायन में राजस्थान के मामे खान, असम के लोक संगीत के लिए भूपेन हजारिका और बंगाल के बाऊल गायन के लिए पार्वती बाऊल प्रमुख स्वर बनकर उभरे। राजस्थानी लोक संगीत को आधुनिक अंदाज में पेश करने के लिए इला अरुण ने नाम कमाया।

फिल्मी संगीत का सफर

हिंदी सिनेमा जगत ने भी भारतीय संगीत को शिखर में पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गुलाम हैदर, नौशाद, सी. रामचंद्र, हुस्नलाल-भगतराम, चित्रगुप्त, गुलाम मुहम्मद, सचिन देव बर्मन, खय्याम, रोशन, शंकर-जयकिशन, मदन मोहन, हेमंत कुमार, ओ.पी. नैयर, रवि, जयदेव, कल्याणजी-आनंदजी, उषा खन्ना, लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल, राहुल देव बर्मन, रवींद्र जैन, बप्पी लाहिड़ी, इलैयाराजा, ए.आर. रहमान, इस्माइल दरबार ने भारतीय संगीत की मधुरता को सँजोया। शिव-हरि (शिवकुमार शर्मा और हरिप्रसाद चौरसिया) की जोड़ी ने भी फिल्मों में धूम मचाई। नौशाद और वसंत देसाई ने शास्त्रीय गायकों से फिल्मों में गवाया। कुंदनलाल सहगल के बाद मुहम्मद रफी, मुकेश, किशोर कुमार, तलत महमूद से लेकर मुहम्मद अजीज, कुमार शानू, उदित नारायण, राहत फतेह अली खान, अभिजीत, शान, हिमेश रेशमिया तक गायकों की एक लंबी फेहरिस्त है। लता मंगेशकर, आशा भोसले, अनुराधा पौडवाल से लेकर अलका याज्ञनिक, कविता कृष्णमूर्ति, सुनीधि चौहान, श्रेया घोषाल ने भी अपनी मीठी आवाज से फिल्मी गीतों को सजाया है।

विश्व संगीत पर नजर

पाश्चात्य संगीत के इतिहास में जर्मन संगीतकार लुडविग वैन बीथोवेन अपनी अद्भुत सिम्फनी के लिए प्रसिद्ध हैं। जोहान सेबेस्टियन बाख ने ऑर्गन वादन के क्षेत्र में परचम लहराया, तो पियानो वादक के रूप में फ्रेडरिक चोपिन मशहूर हुए। मौजूदा समय में टेलर स्विफ्ट पॉप और कंट्री म्यूजिक की रानी कही जाती हैं, तो एड शीरन गिटार-आधारित पॉप गानों और बीली इलिश गहरे, आत्मनिरीक्षण वाले गानों के लिए के लिए पसंद की जाती हैं। हैरी स्टाइल्स पॉप-रॉक और फैशन और डुआ लीपा रेट्रो-पॉप गानों के लिए मशहूर हैं। के-पॉप समूह बीटीएस ने पश्चिमी संगीत जगत में धाक जमाई है, तो द वीकेंड, आरएंडबी और पॉप के मिश्रण के साथ आधुनिक संगीत की एक प्रमुख हस्ती हैं।

विश्व संगीत दिवस

इसकी शुरुआत 1982 में फ्रांस के तत्कालीन सांस्कृतिक मंत्री जैक लैंग और संगीतकार मौरिस फ्लूरेट ने की थी। इसे 'फेटे डी ला म्यूजिक' भी कहा जाता है, जिसका अर्थ है संगीत उत्सव। इसका उद्देश्य विभिन्न समुदायों और संस्कृतियों के बीच संवाद तथा एकता को बढ़ावा देने के लिए संगीत का उपयोग करना, संगीत को हर किसी के लिए सुलभ बनाना, ताकि अमीर-गरीब का भेद मिटे और सभी लाइव म्यूजिक का आनंद ले सकें, दुनियाभर में संगीत की विभिन्न विधाओं (शास्त्रीय, लोक, आधुनिक) को बढ़ावा देना एवं रसिकों को संगीत से जोड़ना और नए तथा स्थापित कलाकारों को मंच प्रदान करना है।

जैव विविधता से बँधीं मानवता की साँसें

दुनिया के विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों, प्रजातियों और आनुवंशिक जीनों को अपने में समाहित किये हुए जैव विविधता केवल वैज्ञानिक शब्द नहीं है, वरन पृथ्वी का जीवंत ताना-बाना है। हर चेतन सूक्ष्म जीव से लेकर विशाल जड़ सागरों, पर्वतों तक में व्याप्त प्रत्येक प्राणी, वृक्ष, जल, जंगल सब मिलकर उस जटिल जाल को रचते हैं, जिस पर विश्व सभ्यताएँ फलती-फूलती आई हैं। लगभग 4.5 अरब वर्षों की उद्विकासीय जैविक प्रक्रिया ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवों की आबादी में उनके आनुवंशिक लक्षणों के माध्यम से धीरे-धीरे और क्रमिक परिवर्तन करते हुए

डॉ. शुभ्रता मिश्रा

स्वतंत्र लेखिका हैं। 'विज्ञान प्रगति' एवं 'आविष्कार' जैसी पत्रिकाओं में उनके विज्ञान लेख नियमित प्रकाशित होते रहते हैं।

प्रकाशन : 'भारतीय अंटार्कटिक संभारतंत्र', 'अंतरराष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान : स्वर्णिम पचास वर्ष', 'अंटार्कटिका : भारत की हिमानी महाद्वीप के लिए यात्रा' आदि पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : मध्य प्रदेश युवा वैज्ञानिक पुरस्कार (1999), राजीव गाँधी ज्ञान-विज्ञान मौलिक पुस्तक लेखन पुरस्कार-2012 (2014 में प्रदत्त), वीरांगना सावित्रीबाई फुले राष्ट्रीय फेलोशिप सम्मान (2016), नारी गौरव सम्मान (2016)।

संपर्क : मोबाइल– 8975245042
ईमेल– shubhrataravi@gmail.com

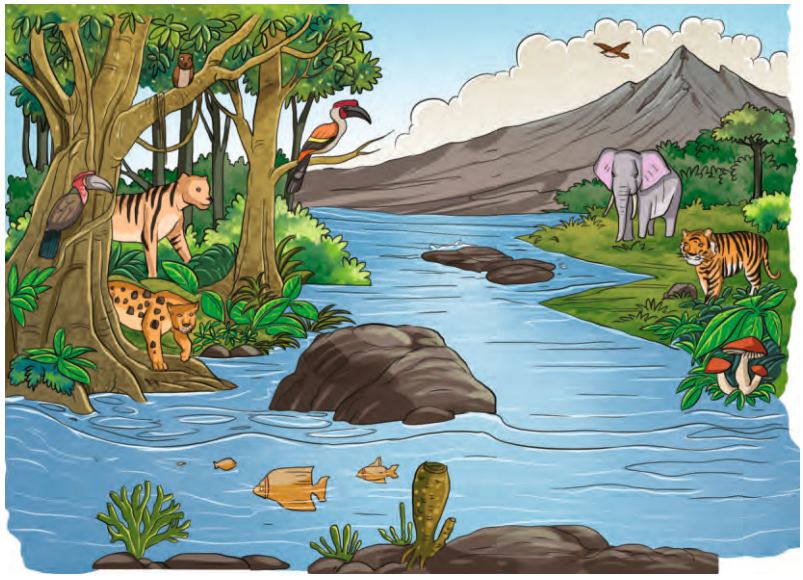

पृथ्वी पर नई-नई प्रजातियों के सृजन द्वारा आज की अद्भुत जैव विविधता को जन्म दिया है।

जीवन और प्रकृति का मौन संवाद

मनुष्य और जीवित जगत के बीच एक शांत, निरंतर संवाद चलता रहता है, एक ऐसा संवाद, जो भाषा और शहरी परिदृश्य से भी पहले का है। यह उस शांति में महसूस होता है, जो वन में टहलते समय मन पर उतर आती है, उस हल्की प्रसन्नता में, जो खिड़की पर बैठे पक्षी को देखकर मिलती है या उस संतोष में, जो घर के पौधे की देखभाल से प्राप्त होता है। यह जुड़ाव कोई संयोग या मात्र काव्यात्मक कल्पना नहीं है। यह उसी जैविक उत्तराधिकार का गहरा हिस्सा है, जिसे जीवविज्ञानी ई.ओ. विल्सन ने बायोफिलिया परिकल्पना कहा। उनका मानना था कि चूँकि मानव ने अपने विकासक्रम का अधिकांश समय प्रकृति में बिताया है, इसलिए उसके भीतर अन्य जीवन रूपों से जुड़ने की सहज आवश्यकता बनी हुई है। अतः मानव-कल्याण उसके चारों ओर विद्यमान जीवन की विविधता और समृद्धि से गहराई से जुड़ा हुआ है।

जगत की जीवनरेखा : जैव विविधता

यह जैव विविधता ही है, जो समस्त जगत के लिए प्राकृतिक पोषणा है, औषधालय है, जलवायु संतुलनधात्रा है और अंततः मानव-संस्कृति और परंपराओं को जीवित रखने वाली आधारशिला है। दुनिया की आधी से अधिक अर्थव्यवस्था प्रकृति पर आधारित है, वहीं एक अरब से अधिक लोग अपने जीवन-यापन के लिए वनों पर निर्भर हैं। जंगल व महासागर मिलकर हर साल

अरबों टन कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करते हैं। सदियों से मैंग्रोव तटीय समुदायों को चक्रवातों से बचाते आए हैं और परागणकर्ता वैश्विक खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करते रहे हैं, लेकिन यह जीवनरेखा अब टूटने लगी है, क्योंकि मुख्य रूप से बढ़ती मानव-जनसंख्या और संसाधनों के अनियंत्रित उपभोग की प्रवृत्तियों से प्रेरित वनों की कटाई और शहरीकरण, अवैध शिकार और मछली पकड़ने जैसी अन्य और गतिविधियों से प्रजातियों का अत्यधिक दोहन, आक्रामक प्रजातियों का प्रवेश, औद्योगिक कृषि, प्रदूषण जैसी कई अप्राकृतिक गतिविधियाँ एवं इनके कारण उत्पन्न हुआ जलवायु परिवर्तन एवं पारिस्थितिक असंतुलन जैव विविधता को कहीं गहराई से प्रभावित करने लगे हैं। आज हालात ये हैं कि पर्यावास विनाश से विश्व विपिन तिरोहित हो रहे हैं, प्रवाल भित्तियाँ रंगहीन हो रही हैं, 85 प्रतिशत आर्द्र भूमियाँ अदृश्य हो चुकी हैं और लगभग दस लाख प्रजातियाँ विलुप्ति के कगार पर खड़ी सिसक रही हैं। अस्तु, जगत के अस्तित्व की आधार इस जैव विविधता को सुरक्षित करना केवल प्रकृति की रक्षा करना नहीं है, वरन मानवता के भविष्य को सुरक्षित करना है।

जैव विविधता : प्रमुख आयाम

जैव विविधता को तीन मुख्य रूपों में विभाजित किया गया है। पहली, आनुवंशिक विविधता, जिसमें एक ही प्रजाति के भीतर समाहित भिन्नता दिखाई देती है। जैसे, श्वानों की अलग-अलग नस्लें या धान की अनेक किस्में। यही आनुवंशिक विविधता जीवों को बदलते परिवेश में अनुकूलन की क्षमता देती है और उन्हें अधिक सशक्त बनाती है। दूसरी, प्रजातीय विविधता, जो किसी क्षेत्र विशेष में उपस्थित विभिन्न प्रजातियों की उपस्थिति और संख्या को दर्शाती है। उदाहरण के लिए, एक ही जंगल में शेर, हाथी, हिरण और पक्षियों या फिर नदी के मुहाने पर विभिन्न प्रकार की मछलियों, कीड़ों और घोंघों का एक साथ रहना प्रजातीय विविधता है। किसी पारिस्थितिक तंत्र में प्रजातियों की अधिकता उसके अधिक स्वस्थ और स्थिर होने का प्रतीक है। तीसरी, पारिस्थितिक विविधता, जिसके अंतर्गत विभिन्न पारिस्थितिक आवासों की विविधता आती है। यह वनों, आर्द्र प्रदेशों, प्रवाल भित्तियों और मरुस्थलों जैसे विभिन्न आवासों और पारिस्थितिक प्रक्रियाओं की विविधता को समेटे हुए है। इसके अतिरिक्त, क्रियात्मक विविधता इस बात पर केंद्रित है कि अलग-अलग प्रजातियाँ पारिस्थितिक तंत्र में कौन-सी भूमिकाएँ निभाती हैं। वहीं, पारिस्थितिक श्रेणियाँ, यथा अल्फा (एक ही आवास के भीतर), बीटा (दो आवासों के बीच) और गामा (पूरे परिदृश्य में) जैव विविधता की गहराई और विस्तार को समझने में सहायक होती हैं। ये सभी आयाम मिलकर प्रकृति का संतुलन, स्थिरता और लचीलापन बनाए रखने, आवश्यक पारिस्थितिक सेवाएँ प्रदान करने और जीव कल्याण हेतु खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में लगे रहते हैं। मानो वे जगत के अनेक समुदायों और उनके परस्पर संबंधों का उत्सव मनाते रहते हैं।

जैव-सांस्कृतिक विविधता और मानव-कल्याण : जीवन का सहगान

मानव-समाज ने जैव विविधता को हजारों वर्षों से उसके उपयोगितावादी मूल्य, जैसे भोजन, सामग्री या श्रम से कहीं अधिक उसे सांस्कृतिक महत्व प्रदान किया है। अनेक पौधे और पशु स्थायी प्रतीकात्मक अर्थ रखते हैं, जो राष्ट्रीय प्रतीकों, लोककथाओं और धार्मिक ग्रंथों में दिखाई देते हैं। उदाहरणस्वरूप, ब्रिटिश राजशाही के प्रतीक पर सिंह अंकित है, मोर और ग्वाटेमाला का रेस्प्लेंडेंट क्वेट्ज़ल पक्षी जैसे कई और भी पक्षी कई विश्व-धर्मों में अत्यंत पूजनीय एवं किंवदंतियों में अमर हैं। भारत में भी जैव विविधता के सांस्कृतिक महत्व के दर्शन आसानी से हो जाते हैं। अनेक जीव-जंतु और पौधे भारतीय राष्ट्रीय प्रतीकों, लोककथाओं और धार्मिक परंपराओं में गहराई से जुड़े हुए हैं। उदाहरणस्वरूप, शक्ति तथा साहस का प्रतीक बाघ भारत का राष्ट्रीय पशु है, तो अमरत्व और स्थायित्व का प्रतीक बरगद का वृक्ष भारतीय लोककथाओं और धार्मिक अनुष्ठानों में बार-बार प्रकट होता है। वहीं सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्व से भरी गंगा नदी को जीवनदायिनी माता के रूप में पूजा जाता है। इन समस्त उदाहरणों से एक बात निकलकर आती है कि जैव विविधता और मानव-संस्कृति का संबंध उपयोगिता तक सीमित नहीं है। इसमें जीवन और संस्कृति के एक गहन अविभाज्य सहजीवन के दर्शन होते हैं। यही जैव-सांस्कृतिक विविधता है।

मानव-जीवन और प्रकृति के बीच एक अदृश्य, निरंतर संवाद चलता है, जो मानसिक शांति, शारीरिक स्वास्थ्य और सामाजिक-आध्यात्मिक जुड़ाव को आकार देता है। जब मनुष्य अपने परिवेश से बतियाता है, तब स्थानीय पारिस्थितिक तंत्र परंपराओं, भाषाओं और ज्ञान प्रणालियों को आकार मिलते हैं और प्रतिफल स्वरूप वे सांस्कृतिक आचार-व्यवहार प्रकृति के संरक्षण में योगदान करते हैं। प्रकृति, जैव विविधता और समाज में अंतर्निहित उनके सांस्कृतिक संबंधात्मक मूल्य यह परिभाषित करते हैं कि विविध समुदाय स्वयं को और प्रकृति से अपने रिश्ते को कैसे देखते हैं। मानव-सभ्यता का विस्तार जब औद्योगिक वैश्वीकरण की ओर बढ़ा, तब उसने प्रकृति और जैव विविधता के साथ के सहगान की कोमल लय को तोड़ना शुरू कर दिया। जलवायु तापन, पारिस्थितिक तंत्र क्षरण, प्रजातियों और भाषाओं की विलुप्ति, ये सब उसी असंतुलन के संकेत हैं, जो मनुष्य ने स्वयं रचे हैं। सोचिए, आज शहरी वातावरण कैसे मनःएकाग्रता को थका देता है, जबकि विविध प्राकृतिक परिवेश अपने मृदु आकर्षण से ध्यान को विश्राम और पुनर्नवीकरण का

अवसर देते हैं। उड़ती हुई तितलियाँ, पेड़ों से बहती हवा की सुंदर ध्वनि या फूलों की रंगीन छटा कैसे बिना मानसिक दबाव के सहजता से आकर्षित करती है। यही कारण है कि जैव विविधता से भरपूर वातावरण तनाव को घटाता है, कॉर्टिसोल स्तर कम करता है, रक्तचाप और हृदयगति को संतुलित करता है और शरीर को 'लड़ो या

वर्ष 2000 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने जैव विविधता के संरक्षण, उसके महत्व और वैश्विक पारिस्थितिकी तंत्र में उसकी भूमिका और मानव गतिविधियों से उत्पन्न खतरों के बारे में समझ एवं जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से 22 मई को अंतरराष्ट्रीय जैव विविधता दिवस के रूप में घोषित किया। इनके बाद के वर्ष 2015 का पेरिस समझौता और 2022 में कुनमिंग-मॉन्ट्रियल ग्लोबल बायोडायवर्सिटी फ्रेमवर्क भी ऐतिहासिक रहे। वर्ष 2024 में कोलंबिया के काली शहर में आयोजित हुआ संयुक्त राष्ट्र जैव विविधता सम्मेलन, जो सीओपी-16 के नाम से जाना जाता है, के दौरान देशों ने काली फंड पर सहमति बनाई, जिसका उद्देश्य 2030 तक हर वर्ष जैव विविधता के लिए अतिरिक्त 200 अरब डॉलर जुटाना है।

भागो' की स्थिति से 'आराम और सुपाचन' की स्थिति में ले जाता है। प्रकृति की जटिलता और नवीनता मस्तिष्क को उत्तेजित करती है, पत्तियों की सूक्ष्म बनावट या पक्षियों के गीत जैसी विविधताएँ स्मृति, समस्या-समाधान और रचनात्मकता को बढ़ाती हैं, जिससे कलाकारों और लेखकों को प्रेरणा मिलती है। हरित स्थल व्यक्तिगत शांति देते हैं और जीवन के ऐसे केंद्र बन गए हैं, जहाँ सामाजिक संवाद और अपनापन पनपता है। प्रकृति की सुंदरता और विविधता मन में विस्मय जगाती है और आत्म से परे किसी बड़े अस्तित्व से जुड़ाव की भावना उत्पन्न करती है। इस प्रकार, जैव विविधता केवल पारिस्थितिक संतुलन का आधार नहीं है, बल्कि मानसिक शांति, शारीरिक स्वास्थ्य, रचनात्मकता और सामाजिक-आध्यात्मिक अर्थपूर्णता का भी स्रोत है, एक ऐसा सहगान, जो जीवन को गहराई और पूर्णता प्रदान करता है।

इस सहगान को आज भी उन जनजातीय समाजों में विशुद्ध रूप में देखा जा सकता है, जो विश्व की कंदराओं में भागदौड़ से दूर, शांतिपूर्ण जीवन-यापन कर रहे हैं। वे अपने अनुष्ठानों, गीतों और पारंपरिक प्रथाओं में प्राकृतिक संसाधनों के सतत प्रबंधन में तल्लीन हैं। प्रकृति-संरक्षण एवं प्रबंधन में उनकी सांस्कृतिक प्रथाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पारंपरिक खेती, मछली पकड़ने के तरीके या मौसमी प्रतिबंध जैव विविधता को सुरक्षित रखते हैं। आज इन स्थानीय ज्ञान प्रणालियों को मान्यता देना सफल संरक्षण प्रयासों के लिए अनिवार्य है, क्योंकि इनका मानव-कल्याण पर गहरा प्रभाव होता है। यह सत्य है कि जब स्थानीय प्रजातियाँ विलुप्त होती हैं, तो केवल पारिस्थितिक संतुलन ही नहीं बिगड़ता, बल्कि पारंपरिक ज्ञान, भाषाओं और सांस्कृतिक आचार का भी ह्रास हो जाता है। सांस्कृतिक विविधता भी जैव विविधता की तरह सामाजिक प्रणालियों के लचीलेपन को बढ़ाती है। अतः एक की रक्षा करना दूसरे की रक्षा करना है।

वैश्विक और राष्ट्रीय पहलें :
जैव विविधता संरक्षण के संयुक्त समाधान

जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता ह्रास और प्रदूषण आज के त्रिस्तरीय वैश्विक संकट हैं, जिन्हें अलग-अलग नहीं, बल्कि साथ मिलकर हल करना आवश्यक है। सन् 1992 के रियो पृथ्वी शिखर सम्मेलन में यूनाइटेड नेशंस फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज (यूएनएफसीसीसी) और यूनाइटेड नेशंस कन्वेंशन ऑन बायोडायवर्सिटी (यूएनसीबीडी) जैसे दो महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय समझौते अपनाये गए, जिनसे जलवायु और जैव विविधता संरक्षण की वैश्विक रूपरेखा तय हुई। वर्ष 2000 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने जैव विविधता के संरक्षण, उसके महत्व और वैश्विक पारिस्थितिकी तंत्र में उसकी भूमिका और मानव गतिविधियों से उत्पन्न खतरों के बारे में समझ एवं जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से 22 मई को अंतरराष्ट्रीय जैव विविधता दिवस के रूप में घोषित किया। इनके बाद के वर्ष 2015 का पेरिस समझौता और 2022 में कुनमिंग-मॉन्ट्रियल ग्लोबल बायोडायवर्सिटी फ्रेमवर्क भी ऐतिहासिक रहे। वर्ष 2024 में कोलंबिया के काली शहर में आयोजित हुआ संयुक्त राष्ट्र जैव विविधता सम्मेलन, जो सीओपी-16 के नाम से जाना जाता है, के दौरान देशों ने काली फंड पर सहमति बनाई, जिसका उद्देश्य 2030 तक हर वर्ष जैव विविधता के लिए अतिरिक्त 200 अरब डॉलर जुटाना है।

भारत ने भी अपनी समृद्ध प्राकृतिक धरोहर को संरक्षित करने और सतत विकास को बढ़ावा देने के लिए अनेक व्यापक मिशन और योजनाएँ शुरू की हैं। इन पहलों का उद्देश्य आवास पुनर्स्थापन, प्रजाति संरक्षण और संसाधनों का न्यायसंगत प्रबंधन है। जैव विविधता अधिनियम, 2002 के अंतर्गत राष्ट्रीय मिशन ऑन बायोडायवर्सिटी एंड ह्यूमन वेल-बीइंग, ग्रीन इंडिया मिशन, प्रोजेक्ट टाइगर, प्रोजेक्ट एलिफेंट, राष्ट्रीय हिमालयी पारिस्थितिक तंत्र स्थायित्व मिशन, वन्यजीव आवासों का एकीकृत विकास, राष्ट्रीय तटीय मिशन और राष्ट्रीय जैव विविधता कार्ययोजना जैसी पहलें संचालित हैं। इनके माध्यम से भारत बाघ, हाथी और हिमालयी पारिस्थितिकी जैसे विशिष्ट संसाधनों की रक्षा तथा वन आवरण बढ़ाने, जलवायु परिवर्तन को कम करने, समुद्री जीवन और प्रवाल भित्तियों को सुरक्षित रखने तथा स्थानीय ज्ञान प्रणालियों को मान्यता देने में संलग्न है। जैव विविधता का संरक्षण केवल प्रशासनिक जिम्मेदारी नहीं, बल्कि प्रत्येक मानव का नैतिक कर्तव्य है, ताकि वह अपनी संस्कृति, आत्मा और भविष्य की रक्षा कर सके, जैव विविधता से बँधीं मानवता की साँसों को बचा सके।

राष्ट्रीय गौरव के प्रतीक भगवान बिरसा मुंडा

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक में जब ब्रिटिश शासन अपनी प्रशासनिक और आर्थिक पकड़ को और मजबूत कर रहा था, उसी समय छोटानागपुर के वन में एक युवा जननायक का उदय हुआ। यह उदय एक सामाजिक चेतना का जागरण था, जिसका नाम था—बिरसा मुंडा। बिरसा का व्यक्तित्व इसलिए विशिष्ट है, क्योंकि उन्होंने स्वतंत्रता को राजनीतिक सत्ता परिवर्तन के साथ सांस्कृतिक स्वायत्तता, सामाजिक न्याय और प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण सहअस्तित्व के रूप में देखा। उन्हें 'जनजातीय गौरव' के रूप में देखना उस स्मृति की पुनर्स्थापना है, जिसे इतिहास लेखन के मुख्य प्रवाह से बाहर रखा गया। यह वह क्षण है जब राष्ट्र अपने अतीत की आवाज को पहचानता है, जिन्होंने स्वतंत्रता, स्वाभिमान और न्याय की मशाल

डॉ. शत्रुघ्न कुमार पाण्डेय

पिछले 19 वर्षों से संत कोलंबा कॉलेज, हजारीबाग में इतिहास के प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। वह भारतीय उच्चतर अध्ययन संस्थान शिमला में रिसर्च एसोसिएट रहे हैं। वे क्षेत्रीय इतिहास के शोधकर्ता एवं दसाधिक पुस्तकों के लेखक हैं। करीब दस वर्षों तक *प्रभात खबर* और *दैनिक जागरण* के राँची संस्करण में कार्यरत रहे हैं। उनके दर्जनों शोध आलेख राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

प्रज्वलित की थी। केवल पच्चीस वर्ष के अल्पायु में बिरसा ने जो चेतना जगाई, वह 'स्व' के जागरण का प्रतीक बन गई। उनका संघर्ष जल, जंगल और जमीन की रक्षार्थ था, उनकी आध्यात्मिक साधना सामाजिक संगठन की शक्ति बनी और उनका 'अबुआ राज' का स्वप्न आत्मनिर्भर भारत की अवधारणा से जुड़ गया।

औपनिवेशिक इतिहास ने बिरसा को उपद्रवी और उन्मादी कहा, किंतु वह एक दूरदर्शी समाज सुधारक, कुशल संगठक और निर्भीक राष्ट्रनायक थे। उन्होंने समाज को अन्याय के विरुद्ध खड़ा किया और उसे सिखाया कि सांस्कृतिक चेतना और राजनीतिक स्वतंत्रता एक-दूसरे के पूरक हैं। बिरसा मुंडा की गाथा अतीत की स्मृति, वर्तमान का मार्गदर्शन और भविष्य का संकल्प है। आज जब विकास, पर्यावरण और पहचान के प्रश्न हमारे सामने खड़े हैं, बिरसा की विरासत हमें याद दिलाती है कि सच्चा राष्ट्र-निर्माण न्याय, सम्मान और संगठन की नींव पर ही संभव है।

जन्मभूमि से जनचेतना तक

15 नवंबर, 1875 को उलिहातु (खूंटी जिला) में करमी पूर्ति और सुगना मुंडा के घर जन्मे बिरसा का बचपन कठिनाइयों में बीता। यह वह दौर था जब ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन स्थानीय जमींदारों और साहूकारों के साथ मिलकर आदिवासी समाज के जीवनाधार जल, जंगल और जमीन को निगल रहा था। आदिवासियों की सामुदायिक और सांस्कृतिक पहचान खतरे में थी। यह शोषण केवल आर्थिक नहीं था, यह आत्मा पर आघात था। ऐसे ही समय में बिरसा के युवा मन में प्रश्न जागा कि 'हमारी धरती पर पराया राज क्यों?' और यही प्रश्न आगे चलकर 'रानी रायज टुंडू जना, अबुआ रायज सेतेर जना' का उद्घोष बना, जिससे औपनिवेशिक शासन थर्रा उठी थी।

धार्मिक उन्माद नहीं, सांस्कृतिक पुनर्जागरण

वैष्णव आनंद पाण्डेय के धार्मिक विचार में बिरसा को अपने समाज की समस्या का हल दिखा। बिरसा ने आत्म-मंथन किया और 'शत्रु' और 'मित्र' की पहचान की और 'बिरसाइत' का संगठन किया। यह केवल नया पंथ नहीं था, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक शुद्धि का आंदोलन था। इसमें अंधविश्वास, पशु बलि, शराब सेवन और बाहरी प्रभावों का निषेध तथा एकेश्वरवाद, नैतिक जीवन और प्रकृति-सम्मान का संदेश था। यह पंथ उस अकल्पनीय यात्रा का समावेश था, जिसमें एक हाशिए का मुंडा युवक मिशनरी प्रभाव से मुक्त वैष्णव मान्यता के सहारे तीव्र आध्यात्मिक जागरण और भविष्यवक्ता का प्रतीक बन लोगों को संगठित करने लगा और छोटानागपुर पठार में ब्रिटिश साम्राज्यवाद, ईसाई हस्तक्षेप और शोषक तत्वों के विरुद्ध क्रांतिकारी कमांडर बन गया। अनुयायी बिरसा में ईश्वरीय आभा देखने लगे और 'धरती आबा' मानकर उन्हें पूजने लगे। यह पूजा अंधभक्ति की नहीं, नैतिक नेतृत्व की स्वीकृति थी।

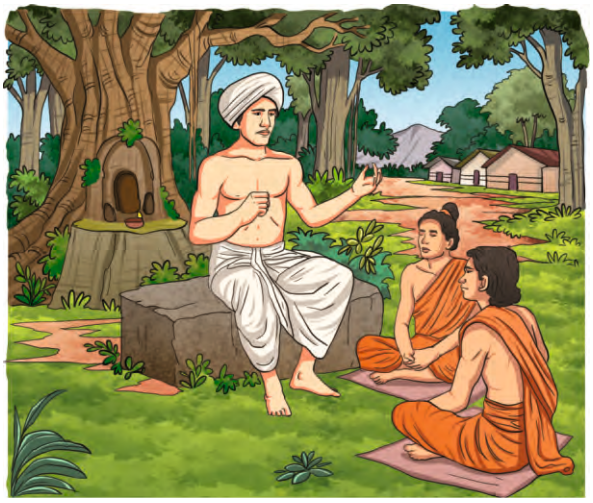

बिरसा ने जनजातीय समाज को आत्मसम्मान का बोध कराया, उन्हें आध्यात्मिक और राजनीतिक चेतना दी। यह धर्म से राजनीति की ओर छलाँग नहीं थी, बल्कि आध्यात्मिक ऊर्जा का राजनीतिक रूपांतरण था। आदिवासी समुदाय उसके नेतृत्व में एकजुट होने लगा और उनके विचार सुनने के लिए अनुयायी बनने लगा।

औपनिवेशिक और मिशनरी दस्तावेजों में बिरसा के इस रूप को 'धार्मिक उन्मादी' कहा गया और उनके संघर्ष को 'धार्मिक मिलेनियम आंदोलन' या 'उन्मादी विद्रोह' के रूप में चित्रित किया गया। किंतु इतिहास की पुनर्व्याख्या बताती है कि यह तथाकथित 'उन्माद' दरअसल एक गहन 'सांस्कृतिक पुनर्जागरण' था और यह आदिवासी पहचान को पुनर्जीवित करने और उनकी सांस्कृतिक स्वायतत्ता को बचाने की गहरी इच्छा से प्रेरित था, जिसे औपनिवेशिक 'राजनीति और धर्म का गठबंधन' नष्ट कर रहा था। इस पुनर्जागरण का प्रेरक 'सनातन ज्ञान' था। बिरसा के उपदेश ने आदिवासियों को अपने मूल विश्वासों में लौटने और विदेशी प्रभाव को नकारने के लिए प्रेरित किया। उपदेश और चमत्कारिक उपचारक की ख्याति से बिरसा 'धरती आबा' और 'भगवान' बन गए और उनकी सोच धार्मिक सीमाओं को पार कर राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता के एक स्पष्ट आह्वान में बदल गया।

उलगुलान : विद्रोह नहीं, आत्मसम्मान की क्रांति

1895 में धरती आबा ने औपनिवेशिक शासन पर पहला वैचारिक प्रहार किया। ब्रिटिश प्रशासन ने इसे गंभीर खतरे के रूप में देखा और उपायुक्त ले. कर्नल ए. इवांस गॉर्डन ने गिरफ्तारी का वारंट जारी कर दिया। पुलिस अधीक्षक जी.आर.ई. मीयर्स ने 22 अगस्त, 1895 की रात लगभग 03:30 बजे बिरसा मुंडा को उनके घर से सुप्त अवस्था में गिरफ्तार किया। उन्हें दो वर्ष की सजा हुई। जेल जीवन ने बिरसा के संकल्प को और मजबूत किया और यहीं उन्होंने अपने उलगुलान की पटकथा लिखी। 30 नवंबर, 1897 को रिहाई के बाद उनका भव्य स्वागत हुआ। उन्होंने अनुयायियों से 'उलगुलान' की बात की और यही 'उलगुलान' सुविचारित क्रांति और सामूहिक चेतना के विस्फोट के रूप में प्रकट हुआ। इसका आर्थिक उद्देश्य आदिवासियों का भूमि-अधिकार को पुनः स्थापित करना था, राजनीतिक उद्देश्य अंग्रेजी शासन समाप्त कर 'अबुआ राज' की स्थापना करना था और धार्मिक उद्देश्य, धर्मांतरण का विरोध और पारंपरिक आस्था का पुनर्जीवन था।

बिरसा ने अपने आंदोलन को धार्मिक और राजनीतिक, दो भागों में बाँटा और शिष्यों की तीन श्रेणियाँ बनाईं—प्रचारक (गुरु) बिरसा के विचार और रणनीति के सूत्रधार थे, पुरानक इन विचारों के सक्रिय संचालक थे और ननक जनसंपर्ककर्ता और संदेशवाहक थे। डोम्बारी पहाड़ी और सिम्बुआ पहाड़ी जैसी दुर्गम जगहों एवं गाँवों में समर्थकों के यहाँ बिरसा के विचारों की सभाएँ होती थीं, जहाँ 'सफेद झंडा' मुंडा राज का और 'लाल झंडा' शोषक तत्वों के अंत के प्रतीक थे। बिरसा ने अपने अनुयायियों के साथ पूर्वजों की भूमि—चुटिया, नवरत्नगढ़, जगन्नाथपुर की यात्राएँ कीं और अपने आंदोलन का सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और रणनीतिक आधार स्थापित किया।

औपनिवेशिक नीति के प्रतिकार के रूप में दिसंबर, 1899 में आंदोलन ने सशस्त्र रूप धारण कर लिया। 24-25 दिसंबर को चर्चों, पुलिस थानों और औपनिवेशिक प्रतीकों पर हमले हुए। छोटानागपुर का एक विशाल क्षेत्र इस आंदोलन से प्रभावित हुआ। खूँटी, तमाड़, बसिया, कर्रा और चाईबासा क्षेत्र आंदोलन के केंद्र में थे। 06 जनवरी को एकटाडीह में पुलिस कप्तान मीयर्स के साथ गया मुंडा के संघर्ष तथा अगले दिन खूँटी थाने पर हमला, आंदोलन के व्यापक जनउभार की अभिव्यक्ति थी।

09 जनवरी, 1900 को डोंबारी बुरु की पहाड़ी पर सैकड़ों आदिवासी एकत्रित हुए थे। यह एक शांत जनसभा थी, परंतु ब्रिटिश प्रशासन ने इसे विद्रोह की सभा मान लिया। उपायुक्त के आदेश पर डोरंडा छावनी के सैनिकों ने सभा पर गोलियों की बौछार कर दी। महिलाएँ, बच्चे और वृद्ध, कोई भी इस हिंसा से बच नहीं पाया। यह उलगुलान का सबसे दर्दनाक एवं रक्तरंजित अध्याय है। इस घटना ने औपनिवेशिक शासन का लज्जापूर्ण चरित्र उजागर किया और इसे लेकर गृह विभाग एवं सैन्य विभाग की थूकम फजीहत हुई, फिर भी कैप्टन रोच और उपायुक्त स्ट्रीटफील्ड एवं आयुक्त फोर्ब्स पर कोई कार्रवाई नहीं की गई। डोम्बारी बुरु आज भी उस संघर्ष का साक्षी है, जहाँ गोलियों के आगे भी आदिवासी साहस नहीं झुका था।

बिरसा आंदोलन की प्रतिध्वनि कलकत्ता के अखबारों से होती हुई सुरेंद्र नाथ बनर्जी के माध्यम से बंगाल लेजिस्लेटिव काउंसिल में गूँजी और लंदन स्थित भारत के राज्य सचिव और फोर्ट विलियम कलकत्ता में बैठे वासयराय को चिंता में डाला। आयुक्त ए. फोर्ब्स ने लिखा था, "बिरसा ने सशस्त्र सेनाएँ इकट्ठी कीं। उनका उद्देश्य अंग्रेजों से छुटकारा पाना है। उन्होंने मुंडा राज्य को फिर से स्थापित करने का प्रस्ताव रखा, और प्रमुख बनने की योजना बनाई। उनके सिद्धांत, धार्मिक विचारों और स्थानीय राजनीति का अनोखा मेल है।"

बिरसा को पकड़ने के लिए सिंहभूम और राँची जिले के चार सौ वर्गमील के क्षेत्र को सैनिक छावनी बना दिया गया। पुलिस बल और सेना को गश्त पर लगाया गया। बिरसा समर्थकों का घर कुर्क और अनाज जब्त किया गया, बेकसूरों को क्रूर यातना दी गई और जेल में डाला गया। फिर भी बिरसा पकड़ से बाहर थे। बिरसा पर 500 रुपये और उनके प्रमुख अनुयायियों पर 100 रुपये का इनाम घोषित किया गया। प्रशासनिक चौकसी, सैन्य तैनाती, दंड एवं पुरस्कार की नीति से अधिक आजीवन भूमि के पट्टे का लालच, अकाल से उत्पन्न भूख एवं डर ने बिरसा आंदोलन के सामाजिक आधार में सेंध लगा दी। कुछ लोगों के लिए औपनिवेशिक यातना से बेहतर था, बिरसा के आंदोलन से अलग होना और प्रशासन के साथ दिखना। खूँटी के 33 और तमाड़ के 17 मुंडाओं को सरकार द्वारा पुरस्कृत करने से कई मुंडा सरकार को अपना हितैषी मान बैठे। गुटुहातु के सिंगराई मुंडा ने बिरसा एवं डोंका मुंडा को ढूँढ़ने में सहायता का आश्वासन दिया और उसे 100 रुपये पुरस्कार दिया गया। क्षेत्र से फौज को हटाकर मुंडा गाँव पर अतिरिक्त आर्थिक दबाव कम करने का स्वांग रचा गया।

03 फरवरी, 1900 को सिंहभूम के संतरा के जंगल से बिरसा को धोखे से गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तार बिरसा ने अपने अनुयायियों से कहा था, "निराश न हों, यह न सोचें कि मैं आपको लड़खड़ाता हुआ छोड़ रहा हूँ। मैंने आपको सभी शस्त्र प्रदान कर दिये हैं। इनकी सहायता से आप अपनी रक्षा करें।"

जेल यातना से जब बिरसा नहीं मरे तो हैजा के नाम पर उन्हें 09 जून, 1900 को राँची जेल में मार डाला गया। उनके पार्थिव शरीर को रात के अंधेरे में गुप्त रूप से कोकर डिस्लरी पुल के निकट अनियोजित तरीके से जलाया गया ताकि उनके अनुयायी कोई स्मारक न बना सकें। यह औपनिवेशिक सोच के तहत आस्था के भगवान के मृत शरीर का सबसे दुखद अंत करने की कोशिश थी, परंतु इतिहास की विडंबना देखिए, जिस शरीर को मिटाने की कोशिश की गई, उसी से एक अमर विचार जन्म ले चुका था।

राष्ट्र गौरव के रूप में बिरसा

भगवान बिरसा मुंडा केवल आदिवासी समाज के नायक नहीं हैं, वे भारतीय राष्ट्रवाद की उस धारा के प्रतिनिधि हैं, जिसने स्वतंत्रता को सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक स्वायत्तता के साथ जोड़ा। आज जब भारत पर्यावरणीय संकट, सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक न्याय

जैसे प्रश्नों से जूझ रहा है, तब बिरसा की विचारधारा और भी प्रासंगिक हो जाती है। उन्होंने प्रकृति को केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवन का आत्मीय आधार माना। उन्होंने आत्मनिर्णय का अधिकार माँगा, परंतु राष्ट्र-विरोधी भाव नहीं पाले। आज जब समाज में विभाजन की रेखाएँ खींचने की प्रवृत्ति दिखती है, बिरसा का जीवन हमें बताता है कि विविधता में एकता ही भारतीयता का सार है। उनका दर्शन पारिस्थितिक नैतिकता का दर्शन है। बिरसा मुंडा केवल अतीत की स्मृति नहीं हैं, बल्कि वर्तमान के लिए मार्गदर्शन और भविष्य के लिए संकल्प हैं। उन्होंने सिखाया कि अन्याय के सामने मौन रहना सबसे बड़ा अपराध है, अपनी संस्कृति की रक्षा करना आत्मसम्मान का प्रश्न है, और प्रकृति के साथ संतुलन ही सभ्यता की सच्ची पहचान है। आज यदि हम उनके विचारों को केवल स्मारकों और समारोहों तक सीमित न रखकर अपने सामाजिक आचरण और राष्ट्रीय नीति में उतारें, तभी उनकी विरासत का वास्तविक सम्मान और उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

योग : आधुनिक युग में आवश्यकता, स्वास्थ्य और वैश्विक महत्व

योग का अर्थ और स्वरूप

'योग' शब्द संस्कृत की 'युज्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है जोड़ना या मिलाना। योग का मुख्य उद्देश्य शरीर, मन और आत्मा के बीच संतुलन स्थापित करना है। योग केवल शारीरिक व्यायाम नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी जीवन-पद्धति है, जो व्यक्ति को मानसिक शांति, शारीरिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक संतुलन प्रदान करती है। महर्षि पतंजलि ने योग की परिभाषा इस प्रकार दी है—

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।

(*योगसूत्र* 1.2)

अर्थात चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। जब मन की चंचलता समाप्त हो जाती है और मन स्थिर हो जाता है, तब व्यक्ति वास्तविक शांति का अनुभव करता है। योग मनुष्य को अपने भीतर झाँकने और आत्मसंयम का मार्ग सिखाता है।

डॉ. हर्ष कुमार शुक्ला

शिक्षा : पी-एच.डी.

संप्रति : श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय में योग प्रशिक्षक के रूप में कार्यरत।

कार्यक्षेत्र : भारतीय संस्कृति वेद अध्ययन; भारतीय संस्कृति, परंपरा और पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों का संरक्षण और संवर्धन; सांस्कृतिक कार्यक्रमों और जागरूकता पहलों जैसे सामाजिक कार्यों में सक्रिय सहभागिता। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा अन्य संस्थानों में भी योग विषय पर व्याख्यान एवं प्रायोगिक अभ्यास के माध्यम से योग का प्रचार।

योग का इतिहास

योग का इतिहास अत्यंत प्राचीन है और इसकी जड़ें भारतीय संस्कृति में गहराई से जुड़ी हुई हैं। वेदों, उपनिषदों और अन्य प्राचीन ग्रंथों में योग का उल्लेख मिलता है। प्रारंभिक समय में योग का उद्देश्य आत्मज्ञान और आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करना था।

महर्षि पतंजलि ने योग को व्यवस्थित रूप प्रदान किया और अपने ग्रंथ 'योगसूत्र' में योग के आठ अंगों का वर्णन किया। योग के आठ अंग हैं— 1. यम, 2. नियम, 3. आसन, 4. प्राणायाम, 5. प्रत्याहार, 6. धारणा, 7. ध्यान, 8. समाधि।

इन आठ अंगों को 'अष्टांग योग' कहा जाता है। इनके अभ्यास से व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास होता है।

योग दिवस की शुरुआत

अंतरराष्ट्रीय योग दिवस की शुरुआत वर्ष 2015 में हुई। वर्ष 2014 में भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने यूनाइटेड नेशंस महासभा में योग दिवस मनाने का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव को विश्व के 177 देशों ने समर्थन दिया और 21 जून को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस घोषित किया गया। 21 जून को इसलिए चुना गया, क्योंकि यह वर्ष का सबसे लंबा दिन (ग्रीष्म संक्रांति के आस-पास) होता है, जो ऊर्जा और सकारात्मकता का प्रतीक माना जाता है। इसका आयोजन स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों और सार्वजनिक स्थानों पर सामूहिक योग अभ्यास के माध्यम से किया जाता है। लोग योग के महत्व को समझते हैं और अपने दैनिक जीवन में योग को अपनाने का संकल्प लेते हैं।

योग का महत्व

योग केवल शारीरिक व्यायाम ही नहीं है, बल्कि यह एक संपूर्ण जीवन-पद्धति है। योग के नियमित अभ्यास से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं, जैसे—

- शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार
- मानसिक तनाव में कमी
- एकाग्रता और स्मरण शक्ति में वृद्धि
- रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि
- जीवन में संतुलन और शांति की अनुभूति

योग में आसन, प्राणायाम, ध्यान और विभिन्न योग क्रियाएँ शामिल होती हैं, जो शरीर और मन को स्वस्थ बनाए रखने में सहायक हैं।

आधुनिक समय में योग की आवश्यकता

वर्तमान समय में जीवन बहुत तीव्र और व्यस्त हो गया है। लोगों की दिनचर्या अनियमित हो गई है और मानसिक तनाव लगातार बढ़ता जा रहा है। ऐसी स्थिति में योग व्यक्ति को संतुलित जीवन जीने का मार्ग दिखाता है।

आज दुनिया के कई देशों में युद्ध और संघर्ष की स्थिति देखने को मिलती है। अलग-अलग देशों के बीच तनाव, हिंसा और अस्थिरता बढ़ती जा रही है। ऐसे समय में मानव-समाज को शांति, धैर्य और सहनशीलता की आवश्यकता है। योग व्यक्ति को आंतरिक शांति और संतुलन प्रदान करता है। यदि मनुष्य के भीतर शांति होगी तो समाज और विश्व में भी शांति स्थापित हो सकती है।

कोरोना जैसी महामारी में योग की उपयोगिता

हाल के वर्षों में आई कोरोना महामारी ने पूरी दुनिया को प्रभावित किया। इस महामारी ने यह स्पष्ट कर दिया कि शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होना कितना आवश्यक है। योग और प्राणायाम शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाने में सहायक होते हैं। नियमित योगाभ्यास से फेफड़ों की क्षमता बढ़ती है और श्वसन तंत्र मजबूत होता है।

कोरोना काल में अनेक लोगों ने योग, ध्यान और प्राणायाम का अभ्यास किया, जिससे मानसिक तनाव कम हुआ और स्वास्थ्य में सुधार देखने को मिला। इससे यह सिद्ध होता है कि योग केवल प्राचीन परंपरा ही नहीं, बल्कि आधुनिक जीवन में भी अत्यंत उपयोगी है।

वायु प्रदूषण और योग की आवश्यकता

आज के समय में वायु प्रदूषण भी एक गंभीर समस्या बन चुका है। भारत के कई बड़े शहरों में प्रदूषण का स्तर लगातार बढ़ रहा है। दिल्ली, कानपुर, गाजियाबाद, लखनऊ और पटना जैसे शहरों में वायु गुणवत्ता कई बार बहुत खराब हो जाती है। ऐसी स्थिति में प्राणायाम और योगासन का अभ्यास फेफड़ों को मजबूत बनाने में सहायक होता है। योग शरीर में ऑक्सीजन के प्रवाह को बेहतर बनाता है और श्वसन तंत्र को स्वस्थ रखने में मदद करता है।

युद्ध और विनाशकारी हथियारों के युग में योग

आज का युग विज्ञान और तकनीक का युग है। विज्ञान ने मानव-जीवन को सुविधाजनक बनाया है, लेकिन इसके साथ-साथ परमाणु हथियार और अन्य विनाशकारी साधनों का भी विकास हुआ है। आज कई देशों के पास परमाणु बम और आधुनिक हथियार हैं, जो पूरी मानवता के लिए खतरा बन सकते हैं। यदि मनुष्य के भीतर नैतिकता, संयम और शांति की भावना नहीं होगी तो विज्ञान की यह शक्ति विनाश का कारण भी बन सकती है। योग मनुष्य को आत्मसंयम, करुणा और सहअस्तित्व का मार्ग सिखाता है। योग के माध्यम से व्यक्ति अपने मन को शांत कर सकता है और हिंसा तथा नकारात्मक विचारों से दूर रह सकता है।

जीवन और स्वास्थ्य में योग का महत्व

योग हमारे जीवन को संतुलित और स्वस्थ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। नियमित योगाभ्यास से शरीर स्वस्थ और मन शांत रहता है।

योग के प्रमुख लाभ—

- शरीर को लचीला और मजबूत बनाता है।
- मानसिक तनाव और चिंता को कम करता है।
- श्वसन प्रणाली को मजबूत करता है।
- एकाग्रता और स्मरण शक्ति को बढ़ाता है।
- सकारात्मक सोच का विकास करता है।

भगवद्गीता में कहा गया है—

समत्वं योग उच्यते।

अर्थात जीवन के सभी परिस्थितियों में समान भाव बनाए रखना ही योग है।

योग का भविष्य

आज योग का महत्व पूरे विश्व में तेजी से बढ़ रहा है। कई देशों में योग को स्वास्थ्य और जीवन-शैली के महत्वपूर्ण साधन के रूप में अपनाया जा रहा है। भविष्य में योग केवल एक व्यायाम-पद्धति नहीं रहेगा, बल्कि यह मानव-जीवन को संतुलित, स्वस्थ और शांत बनाने का एक वैश्विक मार्ग बन सकता है। इस प्रकार, योग न केवल व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है, बल्कि यह विश्व में शांति, संतुलन और सद्भाव स्थापित करने का भी एक महत्वपूर्ण साधन है।

वर्तमान संदर्भ में योग की विश्व व्यापकता

आज योग विश्व का सबसे लोकप्रिय स्वास्थ्य अभ्यास बन चुका है। अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के अवसर पर 2025 में भारत में 25 करोड़ से अधिक लोगों ने भाग लिया, जबकि वैश्विक स्तर पर 190 से अधिक देशों में करोड़ों अभ्यासक शामिल हुए। अमेरिका में पाँच करोड़ से अधिक लोग नियमित योग करते हैं। यूरोप में जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन में योग स्टूडियो प्रति 10 हजार लोगों पर एक है।

एशिया में चीन, जापान और इंडोनेशिया में योग का प्रसार हो रहा है। अफ्रीका के नाइजीरिया, दक्षिण अफ्रीका में योग स्कूल खुल रहे हैं। ऑस्ट्रेलिया में 12 लाख अभ्यासक हैं। कोविड-19 महामारी ने योग को डिजिटल प्लेटफॉर्म पर पहुँचा दिया। यूट्यूब, जूम पर योग-सत्र लाखों दर्शकों को आकर्षित करते हैं।

आयुष मंत्रालय द्वारा 'आयुष्मान भारत योजना' में योग को एकीकृत किया गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) योग को तनाव प्रबंधन और पुरानी बीमारियों के लिए मान्यता देता है। योग एलाइंस रजिस्टर में एक लाख से अधिक प्रमाणित प्रशिक्षक हैं। महिलाओं, युवाओं और वृद्धों में योग की स्वीकार्यता 300% बढ़ी है। कॉर्पोरेट क्षेत्र में गूगल, एप्पल जैसी कंपनियाँ कर्मचारियों के लिए योग सत्र आयोजित करती हैं।

हमारे जीवन में योग क्या महत्व रखता है

योग जीवन का सार है। यह चतुर्विध पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति का साधन है। भौतिक सुखों के साथ आध्यात्मिक उन्नति प्रदान करता है। दैनिक जीवन में योग एकाग्रता, स्मृति-शक्ति और निर्णय-क्षमता बढ़ाता है। कार्यस्थल पर तनाव कम कर उत्पादकता बढ़ाता है।

परिवार में योग संबंधों को मजबूत बनाता है, क्योंकि यह क्रोध, ईर्ष्या जैसी नकारात्मक भावनाओं को नियंत्रित करता है। समाज में योग अहिंसा, सत्य, अस्तेय जैसे यमों से नैतिकता का आधार प्रदान करता है। यह विविधता में एकता का संदेश देता है। शिक्षा क्षेत्र में योग छात्रों की सृजनात्मकता और अनुशासन बढ़ाता है।

आध्यात्मिक रूप से योग आत्म-साक्षात्कार कराता है। भगवद्गीता में कहा गया है, 'योगः कर्मसु कौशलम्' अर्थात योग कार्यों में निपुणता है। आधुनिक भागदौड़ भरी जिंदगी में योग संतुलन लाता है। यह न केवल शरीर को स्वस्थ रखता है, बल्कि मन को शांत कर जीवन को सार्थक बनाता है। योगी जीवन में सुख-दुख का समान भाव रखता है।

स्वास्थ्य में योग क्या महत्व रखता है

योग स्वास्थ्य का सर्वोत्तम साधन है। यह शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्तर पर कार्य करता है। आसन मांसपेशियों को लचीला बनाते हैं, हड्डियों को मजबूत करते हैं तथा जोड़ों के दर्द को दूर करते हैं। प्राणायाम फेफड़ों की क्षमता बढ़ाता है, ऑक्सीजन संचार सुधारता है। अध्ययनों से सिद्ध है कि योग रक्तचाप, कोलेस्ट्रॉल और डायबिटीज नियंत्रित करता है।

मानसिक स्वास्थ्य में योग चिंता, अवसाद कम करता है। भ्रामरी प्राणायाम पैरासिम्पेथेटिक तंत्रिका उत्तेजित कर कॉर्टिसोल हार्मोन संतुलित करता है। शवासन गहरा विश्राम प्रदान करता है। योग प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत करता है, विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालता है। कैंसर रोगियों में योग दर्द कम कर जीवन गुणवत्ता बढ़ाता है। हृदय रोग में सूर्य नमस्कार रक्त-संचार सुधारता है।

महिलाओं में पीसीओडी, थायरॉइड में योग लाभकारी है। वृद्धावस्था में संतुलन आसन गिरने से बचाते हैं। नींद संबंधी विकारों में योग मेलाटोनिन बढ़ाता है। वैज्ञानिक शोध जैसे हार्वर्ड मेडिकल स्टडीज योग को न्यूरोप्लास्टिसिटी बढ़ाने वाला बताते हैं। समग्र स्वास्थ्य के लिए योग अपरिहार्य है।

आधुनिक युग में योग केवल एक प्राचीन भारतीय परंपरा नहीं रह गया है, बल्कि यह मानव-जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता बन चुका है। आज की तेज-रफ्तार जीवन-शैली, जहाँ स्मार्टफोन, स्क्रीन टाइम, ऑफिस की कुर्सी पर घंटों बैठना, अनियमित खान-पान, नींद की कमी और निरंतर तनाव सामान्य हो गए हैं, वहाँ योग शरीर, मन और आत्मा के बीच संतुलन स्थापित करने का सबसे प्रभावी और सुलभ माध्यम साबित हो रहा है।

भविष्य में भारत या पूरे विश्व में योग का योगदान

योग का भविष्य अत्यंत प्रकाशमान है। भारत में 'योग राजधानी' ऋषिकेश को वैश्विक केंद्र बनाया जा रहा है। आयुष मंत्रालय द्वारा योग प्रमाणन और अनुसंधान पर जोर है। 2030 तक भारत 10 लाख योग विशेषज्ञ तैयार करेगा। डिजिटल योग ऐप्स, वीआर योग, एआई आधारित व्यक्तिगत सत्र भविष्य के ट्रेंड होंगे। विश्व में योग मानसिक स्वास्थ्य संकट का समाधान बनेगा। जलवायु परिवर्तन के दौर में 'योग फॉर एनवायर्नमेंट' अभियान उभरेगा। कॉर्पोरेट वेलनेस, स्कूल शिक्षा में योग अनिवार्य होगा। अफ्रीका-लैटिन अमेरिका में योग पहुँच बढ़ेगी। संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों में योग की भूमिका होगी। भारत योग के मूल स्रोत के रूप में वैश्विक गुरु बनेगा। युवा पीढ़ी हठयोग के साथ आध्यात्मिक योग अपनाएगी। महामारी के बाद योग की माँग 500% तक बढ़ी है, जो निरंतर रहेगी। योग विश्व शांति का माध्यम बनेगा।

महाराणा प्रताप
स्वाधीनता और राष्ट्र-चेतना के प्रतीक

राजस्थान की वीरभूमि मेवाड़ के वीर योद्धाओं के इतिहास में महाराणा प्रताप का स्थान उस देदीप्यमान सूर्य के समान है, जिसकी तेजस्विता आज भी भारतीय जनमानस को प्रेरित करती है। उन्होंने स्वाधीनता, स्वाभिमान और राष्ट्र-चेतना जैसे आदर्शों की सुदृढ़ नींव रखी। महाराणा का जन्म 09 मई, 1540 ई. को कुम्भलगढ़ दुर्ग में हुआ था। बाल्यकाल से ही उनकी माता

डॉ. स्वाति जैन

शिक्षा : पी-एच.डी., मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

शोध क्षेत्र : राजस्थान/ मेवाड़ का इतिहास

प्रकाशन : विभिन्न शोध पत्र राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं एवं संगोष्ठी संकलनों में प्रकाशित। प्रमुख संपादित कृतियाँ : *महाराणा उदयसिंह का व्यक्तित्व एवं कृतित्व* (2022), *हल्दीघाटी : ए केस स्टडी* (2024), *हकीकत बहिड़ा महाराणा भीमसिंह* (2025) तथा *हिंदूपति महाराणा संग्राम सिंह प्रथम : स्वतंत्रता के ध्वजधारक* (2025)।

वर्तमान पद : अनुसंधान अधिकारी, महाराणा मेवाड़ अनुसंधान केंद्र, महाराणा मेवाड़ चैरिटेबल फाउंडेशन, सिटी पैलेस, उदयपुर।

विशेष रुचि के क्षेत्र : राजस्थान के धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक विरासत, ऐतिहासिक अभिलेखीय दस्तावेजों, पांडुलिपियों, मानचित्रण परंपराओं का ऐतिहासिक अध्ययन।

महारानी जैवंता बाई ने उनके मन में साहस, शौर्य और स्वाभिमान के संस्कार स्थापित किए। यही संस्कार आगे चलकर उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी शक्ति बने और मुगल साम्राज्य के विरुद्ध उनके अडिग प्रतिरोध के रूप में प्रकट हुए।

16वीं शताब्दी में मेवाड़ और मुगलों के मध्य हुआ संघर्ष केवल दो शासकों का संघर्ष नहीं था, बल्कि वह दो भिन्न विचारधाराओं के मध्य का टकराव था। एक ओर महाराणा प्रताप के नेतृत्व में मेवाड़ स्वतंत्रता, स्वाधीनता और संप्रभुता जैसे आदर्शों का प्रतिनिधित्व कर रहा था, वहीं दूसरी ओर, मुगल साम्राज्य अपनी साम्राज्यवादी नीतियों के लिए प्रतिबद्ध था। प्रताप के समय में राज्य की जो अवधारणा प्रस्तुत हुई, वह केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं थी, बल्कि उसमें गहरी मानवीय संवेदनाएँ भी समाहित थीं। उनके लिए राष्ट्र केवल भौगोलिक सीमा या सत्ता का प्रश्न नहीं था, बल्कि अपनी प्रजा, उनकी संस्कृति, जीवन-मूल्यों और सम्मान की रक्षा का दायित्व भी था। मातृभूमि के प्रति जो सम्मान और समर्पण उनके हृदय में था, वही भावना वे आम जनमानस में भी जागृत करने में सफल रहे।

मेवाड़ की प्रजा में महाराणा प्रताप और उनके आदर्शों के प्रभाव का उदाहरण मुंशी देवीप्रसाद ने अपनी पुस्तक 'राजस्थान के महाराणा एवं राजाओं का जीवन-चरित्र' में प्रस्तुत किया है। एक प्रसंग के अनुसार, महाराणा प्रताप ने एक भाट को प्रसन्न होकर अपनी पगड़ी उपहार में दी थी। जब वह भाट मुगल दरबार में गया और उसने पगड़ी उतारकर अकबर को प्रणाम किया, तब अकबर ने इसका कारण पूछा। उसने निडरता से उत्तर दिया, "यह पगड़ी महाराणा प्रताप की है, जो मुझे भेंट में मिली है,

जिन्होंने स्वयं किसी साम्राज्य के सामने सिर नहीं झुकाया, उस पगड़ी का सम्मान करना मेरा प्रथम कर्तव्य है।"

राज्यों के उत्थान-पतन की ऐतिहासिक यात्रा में विरला ही ऐसा उदाहरण देखने को मिलता है, जहाँ प्रत्येक वर्ग और समुदाय के लोग राज्य के संघर्ष में प्रत्यक्ष भूमिका निभाते हों। महाराणा ने जब अपनी प्रजा की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए पहाड़ी प्रदेशों में जाने का आदेश दिया, तब प्रजा ने राज्य और महाराणा के प्रति अपनी निष्ठा को सर्वोच्च मानकर आज्ञा का पालन किया और पलायन कर गए। उस

समय मेवाड़ प्रदेश की स्थिति का वर्णन करते हुए कर्नल टॉड ने लिखा है, 'मुगलों के साथ युद्ध में समतल भूमि वाले क्षेत्र उजड़ जाने से अरावली से लगाकर पूर्वी उच्च पठारी प्रदेश तक सारा देश, जिसमें बनास और बेड़च नदियाँ बहती हैं, बिना बत्ती के चिराग के समान हो गया। जहाँ अन्न की खेती होती थी वहाँ घास उग आई। मुख्य मार्गों पर बबूल के पेड़ उग गए और उन पर शिकारी जानवर बसने लगे।' वास्तव में, आम जन के लिए अपना घर-बार और भूमि छोड़कर अनिश्चित समय के लिए अज्ञात प्रदेश में पलायन करना निश्चित ही कठिन रहा होगा। इस संघर्ष काल में महाराणा का अरावली के पहाड़ी प्रदेशों में घूम-घूमकर कष्टसाध्य जीवन व्यतीत करना, वनों में निवास करना और आम जन की समस्याओं को अपनी समस्याओं के रूप में स्वीकार करना, इन सबने प्रजा को उनके साथ आत्मिक रूप से जोड़ दिया। सीमित संसाधनों के बावजूद महाराणा ने जनता के नैतिक स्तर को बनाए रखा। प्रजा को अपने महाराणा पर इतना विश्वास था कि उनके एक आदेश पर उसने पर्वतीय प्रदेशों में पलायन कर दिया और भविष्य की चिंता किए बिना अपनी खड़ी फसलों को भी जला दिया, ताकि विरोधी सेना को अन्न प्राप्त न हो सके।

महाराणा ने भी अपनी प्रजा के पालन-पोषण और संरक्षण के लिए किसी प्रकार की कमी नहीं रखी। इस संदर्भ में चक्रपाणि मिश्र द्वारा रचित 'विश्ववल्लभ' ग्रंथ में वैज्ञानिक कृषि तकनीकों के प्रचलन और प्रोत्साहन का उल्लेख मिलता है। संघर्ष के कठिन समय में भी महाराणा ने जनता की आवश्यकताओं और कठिनाइयों को समझते हुए पहाड़ियों को काटकर कृषि योग्य भूमि का निर्माण, जल-संरक्षण के लिए जलाशयों का निर्माण करवाया तथा फल और वन उत्पादों के उत्पादन में वृद्धि के लिए वैज्ञानिक प्रयोगों को प्रोत्साहित किया। इन प्रयासों से स्पष्ट होता है कि महाराणा के राष्ट्रवादी आदर्श केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक ही सीमित नहीं थे, बल्कि उनमें मानव-कल्याण और जन-जीवन की उन्नति का भाव भी निहित था।

मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेशों में रहने वाले भील समुदाय का महाराणा के साथ विशेष आत्मिक संबंध सामाजिक एकता और जनसहभागिता का महत्वपूर्ण उदाहरण है। अरावली के दुर्गम और वनाच्छादित क्षेत्रों में रहने वाले भीलों ने महाराणा प्रताप के संघर्ष में केवल सहयोग ही नहीं दिया, बल्कि उसे अपनी सामूहिक जिम्मेदारी के रूप में स्वीकार किया। कठिन परिस्थितियों में उन्होंने महाराणा और उनकी सेना को मार्गदर्शन, सुरक्षा तथा आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराए। भील समुदाय के प्रमुख राणा पूंजा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने महाराणा प्रताप के प्रति अपनी निष्ठा और सहयोग का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया। हल्दीघाटी के युद्ध सहित अनेक संघर्षों में भीलों ने महाराणा की सेना के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर भाग लिया। उनके सहयोग से महाराणा को अरावली के पर्वतीय क्षेत्रों में अपने संघर्ष को संगठित करने और उसे लंबे समय तक जारी रखने में महत्वपूर्ण सहायता मिली। प्रताप का भील समुदाय के प्रति दृष्टिकोण केवल सामरिक सहयोग तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें सम्मान और विश्वास की भावना भी निहित थी। यही कारण है कि मेवाड़ के राजचिह्न में भील और राजपूत, दोनों की संयुक्त उपस्थिति उस ऐतिहासिक संबंध और पारस्परिक विश्वास का प्रतीक मानी जाती है।

मेवाड़ के इतिहास में अनेक ऐसे प्रसंग मिलते हैं, जो केवल युद्ध या राजनीति की घटनाएँ नहीं हैं, बल्कि राष्ट्र की आत्मा और उसके

मूल्यों को भी प्रकट करते हैं। ऐसा ही एक प्रसंग महाराणा प्रताप के जीवन से जुड़ा हुआ है, जो उनके राष्ट्रप्रेम, मर्यादा और उच्च नैतिक आदर्शों को दर्शाता है। सन् 1580 ई. में अकबर ने अब्दुर्रहीम खान-ए-खाना को अजमेर का सूबेदार नियुक्त किया और मेवाड़ पर आक्रमण करने का आदेश दिया। खान-ए-खाना अपनी सेना के साथ मेवाड़ की ओर बढ़े और शेरपुरा में डेरा डाला। उस समय उनके साथ

उनकी पत्नी माहबानो बेगम और हरम की अन्य महिलाएँ भी थीं। इसी दौरान, महाराणा प्रताप के पुत्र कुँवर अमरसिंह ने शेरपुरा पर आक्रमण किया और खान-ए-खाना की बेगम तथा हरम की महिलाओं को बंदी बना लिया। जब उन्हें महाराणा प्रताप के समक्ष प्रस्तुत किया गया तो उन्होंने कुँवर अमरसिंह को इस कार्रवाई के लिए कड़ी फटकार लगाई। उन्होंने स्पष्ट कहा कि उनका संघर्ष मुगल सैनिकों से है, न कि महिलाओं से। उन्होंने तत्काल आदेश दिया कि सभी महिलाओं को सम्मानपूर्वक और सुरक्षित रूप से खान-ए-खाना के शिविर में वापस पहुँचाया जाए।

यह प्रसंग बताता है कि राष्ट्र की रक्षा केवल तलवार से ही नहीं, बल्कि चरित्र की महानता और नैतिक शक्ति से भी होती है। महाराणा प्रताप का यह व्यवहार भारतीय संस्कृति की मर्यादा, मानवीय संवेदनशीलता और नैतिकता को प्रकट करता है। सच्चा राष्ट्रवाद केवल शत्रु से युद्ध करने तक सीमित नहीं होता, बल्कि उसमें उच्च आदर्श, मानवता और सम्मान की भावना भी सम्मिलित होती है। इस घटना से प्रभावित होकर खान-ए-खाना ने भी महाराणा प्रताप की महानता को स्वीकार किया और बाद में मुगल दरबार में भी उनके चरित्र तथा आदर्शों की प्रशंसा की।

महाराणा प्रताप के काल तक भारत विगत कई शताब्दियों से ऐसी राजसत्ता का अनुभव कर चुका था, जो भारतीय राजनीतिक व्यवस्था और संस्कृति के दृष्टिकोण से भिन्न थी। महाराणा ने इस संघर्ष को केवल राजकीय युद्ध न रहने देकर एक जनयुद्ध का स्वरूप प्रदान किया। मध्यकालीन युग में जहाँ साम्राज्य स्थापित करने की प्रतिस्पर्धा थी, वहाँ एक राष्ट्र की प्रेरणा के साथ स्वतंत्रता, संप्रभुता के आदर्शों को स्थापित कर संघर्ष करना निश्चय ही दूरदर्शी कदम था। बाद में, इसी विचारधारा का विकास भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में दिखाई देता है। प्रताप निश्चय ही अपने समय से आगे थे इसलिए केसरी सिंह बारहठ ने महाराणा के लिए लिखा है—

पग-पग भम्या पहाड़, धरा छोड़ राख्यो धर्म,
इन्सू महाराणा र मेवाड़, हिरदे बसिया हिंद रे।

अर्थात पहाड़ों में पैदल घूमते रहे, धरती को गँवाकर भी उन्होंने अपने धर्म का पालन किया, इसी कारण महाराणा और मेवाड़ हिंद भारत के हृदय में बस गए।

वर्तमान समय में जब वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति और तीव्र सामाजिक परिवर्तन के कारण समाज की संरचना निरंतर बदल रही है, ऐसे में महाराणा प्रताप के आदर्श और उनकी राष्ट्र-चेतना पहले से अधिक प्रासंगिक प्रतीत होती है। उनके जीवन से यह स्पष्ट होता है कि सच्चा राष्ट्रप्रेम केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं होता, बल्कि वह आत्मसम्मान, सांस्कृतिक संरक्षण, सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिक मूल्यों की रक्षा से भी जुड़ा होता है। प्रताप ने अपने संघर्ष के माध्यम से यह संदेश दिया कि किसी भी राष्ट्र की शक्ति केवल उसकी सैन्य या आर्थिक सामर्थ्य में नहीं होती, बल्कि उसके नागरिकों की चेतना, नैतिकता और आपसी विश्वास में निहित होती है। आज के लोकतांत्रिक भारत में यह विचार और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, जहाँ राष्ट्र की प्रगति केवल शासन-व्यवस्था पर नहीं, बल्कि नागरिकों की सक्रिय भागीदारी और उत्तरदायित्व पर भी निर्भर करती है।

महाराणा प्रताप का जीवन यह भी सिखाता है कि कठिन परिस्थितियों में भी अपने मूल्यों और आदर्शों से समझौता नहीं करना चाहिए। उन्होंने सीमित संसाधनों और अनेक चुनौतियों के बावजूद स्वाधीनता और स्वाभिमान को सर्वोच्च स्थान दिया। यही कारण है कि उनका संघर्ष केवल इतिहास की घटना नहीं रह गया, बल्कि वह भारतीय समाज के लिए प्रेरणा का स्थायी स्रोत बन गया है। आज के समय में प्रताप की राष्ट्र-चेतना हमें यह प्रेरणा देती है कि हम अपने कर्तव्यों के प्रति सजग रहें, सामाजिक एकता को सुदृढ़ करें और अपनी सांस्कृतिक विरासत तथा राष्ट्रीय मूल्यों के संरक्षण के प्रति प्रतिबद्ध रहें। इस दृष्टि से महाराणा प्रताप का जीवन और उनके आदर्श भारतीय राष्ट्रवाद की उस परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो आत्मसम्मान, नैतिकता और जनकल्याण के सिद्धांतों पर आधारित है।

चित्र सौजन्य : एम.एम.सी.एफ. (महाराणा मेवाड़ चैरिटेबल फाउंडेशन), सिटी पैलेस, उदयपुर

महारानी दुर्गावती

स्वाभिमान, साहस और बलिदान की अमर कथा

इतिहास के पन्नों में कुछ ऐसे क्षण अंकित होते हैं, जो केवल किसी व्यक्ति या राज्य की कथा नहीं कहते, बल्कि पूरे राष्ट्र की आत्मा को प्रतिबिंबित करते हैं। मध्यकालीन भारत में जब अनेक राज्य साम्राज्यवादी शक्तियों के सामने झुक रहे थे, तब विंध्य और सतपुड़ा की दुर्गम घाटियों में एक ऐसी वीरांगना खड़ी थी, जिसने पराजय से अधिक सम्मानपूर्ण मृत्यु को चुना। वह थीं महारानी दुर्गावती— गोंडवाना की वह अद्वितीय शासिका, जिसने अपने साहस, प्रशासनिक क्षमता और आत्मबलिदान से इतिहास में अमिट स्थान बनाया। महारानी दुर्गावती का नाम भारतीय इतिहास की उन वीरांगनाओं में लिया जाता है, जिन्होंने केवल युद्धभूमि में ही नहीं, बल्कि शासन और समाज के निर्माण में भी अद्भुत योगदान दिया। उनका जीवन केवल एक वीरांगना की कथा नहीं, बल्कि मध्य भारत की सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक चेतना का प्रतीक है।

माधवी उइके

जन्म : मध्य प्रदेश के जिला बालाघाट में

कार्यक्षेत्र : पिछले कई वर्षों से जनजातीय कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में सक्रिय तथा विगत पाँच वर्षों से लेखन और प्रकाशन के क्षेत्र में निरंतर कार्यरत। कला के क्षेत्र में गहरी रुचि।

प्रकाशन : विभिन्न विषयों पर शोध आलेख एवं लेख प्रकाशित। विशेष रूप से बच्चों की चित्र-पुस्तकों के सृजन, चित्रांकन तथा संपादन कार्य में संलग्न।

संप्रति : वर्तमान में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में राष्ट्रीय ई-पुस्तकालय से जुड़ी हुई हैं।

संपर्क : मोबाइल— 9829102862

गोंडवाना राज्य की पृष्ठभूमि

मध्य भारत का विंध्याचल और सतपुड़ा क्षेत्र लंबे समय तक घने जंगलों और दुर्गम पर्वतों के कारण बाहरी आक्रमणों से काफी हद तक सुरक्षित रहा। तेरहवीं सदी में कलचुरियों और चंदेलों के पतन के बाद इस क्षेत्र में राजनीतिक शून्यता उत्पन्न हो गई थी। जब उत्तर भारत में दिल्ली सल्तनत की शक्ति फैल रही थी, तब भी इस क्षेत्र की प्राकृतिक संरचना ने बाहरी सेनाओं के लिए कठिनाइयाँ पैदा कीं। इसी परिस्थिति में यहाँ स्थानीय शक्तियों का उदय हुआ और गोंडों ने एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की, जिसे गढ़ा-कटंगा या गोंडवाना राज्य कहा गया। यह राज्य धीरे-धीरे शक्तिशाली बनता गया और संग्रामशाह जैसे पराक्रमी शासकों के नेतृत्व में इसका विस्तार हुआ। संग्रामशाह के शासनकाल में इस राज्य के अंतर्गत 52 गढ़ थे, जो प्रशासनिक इकाइयों के रूप में कार्य करते थे।

जन्म और प्रारंभिक जीवन

महारानी दुर्गावती का जन्म लगभग 1524 ई. के आस-पास राठ-महोबा (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में चंदेल वंश के राजा कीर्तिसिंह (शालिवाहन, अकबरनामा के अनुसार) के घर हुआ था और वे अपने पिता के सान्निध्य में कालिंजर दुर्ग में रहीं। चंदेल राजपूत परंपरा में पली-बढ़ी दुर्गावती को बचपन से ही युद्धकला, घुड़सवारी, तीरंदाजी और शस्त्र संचालन का प्रशिक्षण दिया गया। उनकी प्रतिभा और सौंदर्य की चर्चा आस-पास के राज्यों तक पहुँच चुकी थी। वह केवल एक राजकुमारी नहीं थीं, बल्कि साहस और

आत्मविश्वास से परिपूर्ण व्यक्तित्व की धनी थीं। शिकार और युद्धकला में उनकी विशेष रुचि थी।

वीरता और सैन्य कौशल

महारानी दुर्गावती उत्कृष्ट घुड़सवार और निपुण योद्धा थीं। वह कुशल बंदूकची और तीरंदाज भी थीं। मुगल इतिहासकार अबुल फज़ल ने लिखा है कि रानी को शिकार का अत्यंत शौक था और वह अकसर बंदूक से शिकार करती थीं। उनकी आदत थी कि यदि उन्हें शेर दिखाई देने की सूचना मिलती तो उसे मारे बिना जल भी ग्रहण नहीं करती थीं।

उनकी वीरता का वर्णन करते हुए रामनगर शिलालेख के कवि जयगोविंद लिखते हैं–

स्वयं समारुह्य गजं रणेषु, बलाज्जयंती प्रबलान्विपक्षान्।
सदा प्रजापालनासावधाना, सा लोकपालान्विफलीचकार॥

अर्थात वह युद्ध में स्वयं हाथी पर चढ़कर जाती थीं और बलपूर्वक शक्तिशाली शत्रुओं को पराजित करती थीं। प्रजापालन में वह इतनी सावधान थीं कि उन्होंने लोकपालों को भी मात दे दी।

दलपतिशाह से विवाह

मध्य भारत के शक्तिशाली गोंड शासक संग्रामशाह के पुत्र दलपतिशाह से दुर्गावती का विवाह लगभग 1542 ई. के आस-पास हुआ। यह विवाह केवल दो व्यक्तियों का नहीं, बल्कि दो सांस्कृतिक परंपराओं 'राजपूत' और 'गोंड' का मिलन था। इतिहासकारों के अनुसार यह विवाह प्रेम और साहस की कथा भी था। कुछ स्रोतों में उल्लेख मिलता है कि दलपतिशाह स्वयंवर में सेना सहित पहुँचे और विरोधियों को पराजित करके दुर्गावती को अपने साथ ले गए। विवाह के बाद दुर्गावती गढ़ा-कटंगा राज्य की राजधानी गढ़ा पहुँचीं, जो आज के जबलपुर नगर का एक भाग है। यहीं से उन्होंने नए राज्य और नई संस्कृति को समझना प्रारंभ किया।

दलपतिशाह का शासन और उदारता

दलपतिशाह के शासनकाल में गढ़ा राज्य समृद्ध और शक्तिशाली बनता गया। उन्होंने अपनी राजधानी गढ़ा से सिंगौरगढ़ स्थानांतरित की, जो विंध्याचल की भांडेर पर्वत श्रेणी में स्थित एक महत्वपूर्ण दुर्ग था। दलपतिशाह उदार और सहिष्णु शासक थे। उन्होंने ब्राह्मण विद्वान महेश ठक्कुर को ग्रामदान दिया, तो मुसलमान संत कपूर बाबा को भी दान दिया। कवि दीक्षित ने उनकी उदारता का वर्णन करते हुए लिखा है कि उनके राज्य में कोई याचक नहीं रहा, क्योंकि सबकी आवश्यकताएँ पूरी होती थीं।

अप्रत्याशित संकट

सुख और समृद्धि का यह काल अधिक समय तक नहीं चला। दलपतिशाह की असामयिक मृत्यु ने राज्य को संकट में डाल दिया। उस समय दुर्गावती की आयु लगभग 26 वर्ष थी और उनका पुत्र वीरनारायण केवल तीन वर्ष का था। रामनगर शिलालेख के अनुसार, पति की मृत्यु के बाद दुर्गावती ने अपने बालक पुत्र का राजतिलक किया और स्वयं राज्य की संरक्षिका बनकर शासन की बागडोर सँभाली।

यह कार्य अत्यंत चुनौतीपूर्ण था, क्योंकि उस समय राज्य के अंदर और बाहर अनेक शक्तियाँ सक्रिय थीं। दलपतिशाह का भाई चंद्रशाह भी सिंहासन पर अधिकार चाहता था, किंतु जनता और प्रमुख अधिकारियों के समर्थन से दुर्गावती ने राज्य की सत्ता अपने हाथों में रखी।

वैधव्य जीवन और शासन

दलपतिशाह की मृत्यु के बाद दुर्गावती पर शासन की पूरी जिम्मेदारी आ गई, उन्होंने अपने पुत्र के संरक्षक के रूप में शासन किया। नर्रई के युद्ध में जब रानी का अवसान हुआ, उस समय उनके वैधव्य का पंद्रहवाँ वर्ष चल रहा था और उनकी आयु लगभग चालीस वर्ष थी। इन वर्षों में रानी का जीवन दो प्रमुख उद्देश्यों के इर्द-गिर्द केंद्रित रहा–'अपने पुत्र वीरनारायण को

योग्य शासक बनाना' और 'गढ़ा राज्य को सुरक्षित और सुदृढ़ बनाए रखना'। रानी ने इन दोनों उद्देश्यों को अत्यंत दक्षता और दूरदर्शिता से पूरा किया।

> **रानी दुर्गावती ने अपने शासनकाल में अद्भुत प्रशासनिक क्षमता का परिचय दिया। उन्होंने राज्य के दीवान अधार कायस्थ और अन्य अधिकारियों की सहायता से शासन-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया। अबुल फज़ल, जो मुगल सम्राट अकबर का दरबारी इतिहासकार था, भी स्वीकार करता है कि रानी दुर्गावती ने साहस और योग्यता का परिचय देते हुए महान कार्य किए। उनके शासनकाल में गोंडवाना राज्य समृद्ध और सुरक्षित बना रहा। उन्होंने राजधानी को सिंगौरगढ़ से चौरागढ़ स्थानांतरित किया, जो सतपुड़ा पर्वत की ऊँचाई पर स्थित एक सुरक्षित दुर्ग था।**

कुशल प्रशासन और नेतृत्व

रानी दुर्गावती ने अपने शासनकाल में अद्भुत प्रशासनिक क्षमता का परिचय दिया। उन्होंने राज्य के दीवान अधार कायस्थ और अन्य अधिकारियों की सहायता से शासन-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया। अबुल फज़ल, जो मुगल सम्राट अकबर का दरबारी इतिहासकार था, भी स्वीकार करता है कि रानी दुर्गावती ने साहस और योग्यता का परिचय देते हुए महान कार्य किए। उनके शासनकाल में गोंडवाना राज्य समृद्ध और सुरक्षित बना रहा। उन्होंने राजधानी को सिंगौरगढ़ से चौरागढ़ स्थानांतरित किया, जो सतपुड़ा पर्वत की ऊँचाई पर स्थित एक सुरक्षित दुर्ग था।

गढ़ा राज्य की विशेषताएँ

कवि केशव दीक्षित ने 'गढ़ेशनृपवर्णनसंग्रहश्लोकाः' में गढ़ा राज्य की विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा—

उर्वरा सर्वतो भूमिः मध्यतो नर्मदा नदी।
विज्ञा दुर्गावती राज्ञी गढ़ाराज्ये त्रयोगुणाः॥

अर्थात गढ़ा राज्य की तीन प्रमुख विशेषताएँ थीं—चारों ओर उपजाऊ भूमि, बीच में प्रवाहित नर्मदा नदी और उस पर शासन करने वाली विदुषी रानी दुर्गावती।

जनकल्याण के कार्य

रानी ने जनता के हित में अनेक निर्माण-कार्य कराए। आज भी जबलपुर का रानीताल उनकी स्मृति को जीवित रखे हुए है। रानीताल के निकट चेरीताल उनकी एक दासी द्वारा बनवाया गया था। उनके मंत्री आधार सिंह कायस्थ ने भी जबलपुर के पास आधारताल का निर्माण कराया। गढ़ा राज्य के आस-पास अनेक सार्वजनिक हित के कार्य उसी काल में संपन्न हुए।

धार्मिक प्रवृत्ति और दानशीलता

रानी स्वभाव से धार्मिक थीं। वैधव्य के दुःख ने भी उनके मन को धर्म की ओर प्रेरित किया। 1558 ई. में वल्लभ संप्रदाय के गुसाईं विठ्ठलनाथ गढ़ा आए। रानी ने उनका भव्य स्वागत किया, उनसे दीक्षा ली और 108 गाँव दान में दिए। उनके साथ आए तैलंग ब्राह्मणों को भी गढ़ा के आस-पास बसने की अनुमति दी गई। उसी काल में चतुर्भुजदास ने गढ़ा में एक मंदिर की स्थापना की, जो आज भी वहाँ विद्यमान है।

धार्मिक सहिष्णुता और विद्वानों का संरक्षण

रानी दुर्गावती धार्मिक दृष्टि से अत्यंत सहिष्णु थीं। उन्होंने मुसलमान अधिकारियों को भी उच्च पद दिए। शम्सखाँ मियाना और खानजहाँ डाकीत उनकी सेना के प्रमुख अधिकारी थे। खानजहाँ डाकीत ने मुगलों के विरुद्ध युद्ध करते हुए अपने प्राण न्योछावर कर दिए। रानी ने विद्वानों को भी संरक्षण दिया। उनके दरबार में महेश ठाकुर, दामोदर ठाकुर, गोप महापात्र और नरहरि महापात्र जैसे विद्वानों को सम्मान प्राप्त था।

कुशल प्रशासिका

रानी दुर्गावती केवल वीर योद्धा ही नहीं, बल्कि अत्यंत कुशल प्रशासिका भी थीं। वह शासन कार्यों में सक्रिय भाग लेती थीं और कभी-कभी पुरुषों के वस्त्र पहनकर भी प्रशासनिक कार्य करती थीं। अबुल फज़ल के अनुसार, उन्होंने अपने शासनकाल में अनेक महान कार्य किए, जिनसे राज्य की व्यवस्था सुदृढ़ हुई और जनता का स्नेह भी उन्हें प्राप्त हुआ। गोंड राजवंश के इतिहास में जितनी कीर्ति दुर्गावती ने अर्जित की उतनी किसी अन्य शासक ने नहीं की।

पड़ोसी राज्यों से संघर्ष

रानी के शासनकाल में अनेक पड़ोसी राज्यों के साथ संघर्ष भी हुए। मालवा के शासक बाजबहादुर ने गोंडवाना पर आक्रमण किया, किंतु रानी की सेना ने उसे पराजित कर दिया। इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार इस युद्ध में बाजबहादुर को इतनी अपमानजनक हार मिली कि उसे अकेले ही भागकर सारंगपुर पहुँचना पड़ा। यह विजय केवल सैन्य शक्ति का प्रमाण नहीं थी, बल्कि रानी के नेतृत्व और रणनीतिक कौशल का भी उदाहरण थी।

मुगल साम्राज्य से टकराव

16वीं सदी में मुगल सम्राट अकबर भारत में अपना साम्राज्य-विस्तार कर रहा था। गोंडवाना राज्य की समृद्धि और संपत्ति की चर्चा सुनकर अकबर के सेनापति आसफ खाँ की दृष्टि इस राज्य पर पड़ी। 1564 ई. में आसफ खाँ ने लगभग दस हजार सैनिकों के साथ गोंडवाना पर आक्रमण कर दिया। उस समय रानी के पास पर्याप्त सेना नहीं थी, क्योंकि अचानक हुए आक्रमण से कई सैनिक अपने परिवारों की सुरक्षा के लिए लौट गए थे। फिर भी रानी ने हार मानने के बजाय युद्ध का निर्णय लिया।

नेतृत्व और रणनीतिक कौशल

रानी दुर्गावती में अद्‌भुत नेतृत्व-क्षमता थी। नर्रई के युद्ध में जब मुगल सेनापति आसफखाँ ने आक्रमण किया, तब रानी ने अत्यंत ओजस्वी भाषण देकर सैनिकों में उत्साह भर दिया। वह युद्ध के समय अपने सैनिकों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर लड़ती थीं और घायल सैनिकों की स्वयं देखभाल करती थीं। मृत सैनिकों के परिवारों के प्रति उनकी सहानुभूति का उल्लेख भी अबुल फज़ल ने किया है। नर्रई के युद्ध में प्रारंभिक विजय रानी की युद्ध-नीति के कारण ही संभव हुई थी।

नर्रई का ऐतिहासिक युद्ध

रानी दुर्गावती ने अपनी सेना के साथ नर्मदा और गौर नदियों के बीच स्थित नर्रई घाटी में मोर्चा सँभाला। यह स्थान प्राकृतिक रूप से सुरक्षित था। युद्ध अत्यंत भीषण था। रानी स्वयं अपने प्रिय हाथी सरमन पर सवार होकर सेना का नेतृत्व कर रही थीं। उनके पुत्र वीरनारायण ने भी अद्‌भुत वीरता दिखाई और कई बार मुगल सेना को पीछे हटने पर मजबूर किया, परंतु अंततः युद्ध की दिशा बदल गई। वीरनारायण घायल हो गए और रानी को भी तीर लग गए।

अमर बलिदान

युद्ध के दौरान एक तीर रानी की कनपटी में लगा। उन्होंने उसे निकालकर फेंक दिया, किंतु कुछ ही देर बाद दूसरा तीर उनकी गर्दन में आ लगा। रक्तस्राव से वह मूर्छित हो गईं। जब उन्हें लगा कि अब मुगल सेना के हाथों बंदी होने का खतरा है, तब उन्होंने अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए आत्मबलिदान का मार्ग चुना। इस प्रकार, 24 जून, 1564 को यह महान वीरांगना युद्धभूमि में वीरगति को प्राप्त हुई।

इतिहास में अमर विरासत

महारानी दुर्गावती का जीवन साहस, स्वाभिमान और नेतृत्व का अद्वितीय उदाहरण है। उन्होंने एक ऐसे समय में शासन सँभाला जब परिस्थितियाँ अत्यंत कठिन थीं। उन्होंने न केवल राज्य को सुरक्षित रखा, बल्कि उसे समृद्ध और शक्तिशाली भी बनाया। उनका बलिदान यह संदेश देता है कि स्वतंत्रता और सम्मान किसी भी राज्य या समाज की सबसे बड़ी संपत्ति है। आज भी मध्यप्रदेश और विशेष रूप से गोंड समुदाय में महारानी दुर्गावती को अत्यंत श्रद्धा और सम्मान के साथ याद किया जाता है। उनके नाम पर विश्वविद्यालय, संग्रहालय और अनेक संस्थान स्थापित किये गए हैं।

महारानी दुर्गावती केवल गोंडवाना की रानी नहीं थीं, बल्कि भारत की महान वीरांगनाओं में से एक थीं। उन्होंने यह सिद्ध किया कि साहस, बुद्धिमत्ता और दृढ़ संकल्प से कोई भी व्यक्ति इतिहास की धारा को प्रभावित कर सकता है। उनकी कथा हमें यह भी सिखाती है कि शक्ति केवल सेना या साम्राज्य में नहीं होती, बल्कि आत्मसम्मान और न्यायप्रियता में भी होती है। विंध्य और सतपुड़ा की घाटियों में गूँजती उनकी वीरगाथा आज भी हमें प्रेरित करती है कि कठिन परिस्थितियों में भी साहस और स्वाभिमान का मार्ग नहीं छोड़ना चाहिए।

महारानी दुर्गावती का जीवन भारतीय इतिहास की अमूल्य धरोहर है—एक ऐसी धरोहर, जो आने वाली पीढ़ियों को सदैव प्रेरणा देती रहेगी।

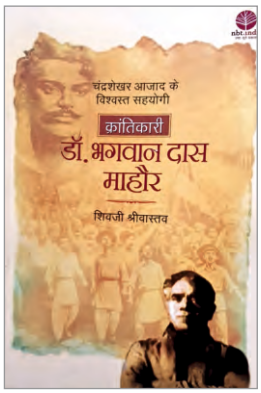

समीक्षक : **डॉ. पूनम चौधरी**

लेखक : **शिवजी श्रीवास्तव**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 142

मूल्य : रु. 210/-

चंद्रशेखर आजाद के विश्वस्त सहयोगी क्रांतिकारी डॉ. भगवान दास माहौर

» राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित शिवजी श्रीवास्तव की कृति 'चंद्रशेखर आजाद के विश्वस्त सहयोगी : क्रांतिकारी डॉ. भगवान दास माहौर' भारतीय स्वतंत्रता के एक ऐसे सेनानी की जीवनगाथा है, जो इतिहास में अल्पज्ञात हैं। चंद्रशेखर आजाद के अभिन्न सहयोगी रहे भगवान दास माहौर की यह जीवनगाथा केवल एक व्यक्ति की कथा नहीं, बल्कि भारतीय क्रांति के उस अनदेखे-अनुल्लिखित पक्ष को सामने लाने का सशक्त प्रयास है, जहाँ विचार, संगठन, त्याग और सृजन एक-दूसरे में घुलकर राष्ट्र-निर्माण की चेतना बनते हैं। यह पुस्तक किसी व्यक्ति विशेष का स्मारक भर नहीं है, बल्कि उस दीर्घ चेतना के इतिहास का नैतिक दस्तावेज है, जिसने इस क्रांतिकारी आंदोलन को सशक्त बनाया।

यह कृति क्रांतिकारी आंदोलन की एक जटिल, किंतु अधिक मानवीय और कारुणिक छवि प्रस्तुत करती है। चंद्रशेखर आजाद केवल पौरुष और पराक्रम का प्रतीक बनकर नहीं उभरते, बल्कि विश्वास और सहयोग की धुरी के रूप में सामने आते हैं। इसी पृष्ठभूमि में आजाद के चारों ओर डॉ. माहौर जैसे विश्वस्त सहयोगी हैं, जिनकी भूमिका संघर्ष के वैचारिक चरण से लेकर सशस्त्र अवस्था तक दोनों ही कालखंडों में समान रूप से निर्णायक रही है।

शिवजी श्रीवास्तव की यह पुस्तक संदेश देती है कि क्रांति का आशय केवल बंदूक उठाना नहीं, बल्कि अनुशासन, संगठन और वैचारिक स्पष्टवादिता के साथ समाज में बदलाव लाना है। यह पुस्तक आग्रह करती है कि राजनीतिक इतिहास को फिर से मानवीयता और भावनात्मक बुद्धि के साथ पढ़ा जाए। यह लेखक की वैचारिक सामर्थ्य और दूरदर्शिता है कि डॉ. भगवान दास माहौर पर केंद्रित पुस्तक उनके साथ-साथ समानांतर परिदृश्य को भी उपेक्षित नहीं करती और यही प्रासंगिकता लेखक की कलम को विश्वसनीय बना रही है।

इस पुस्तक का दूसरा कालखंड, जो स्वतंत्रता के बाद का है, वह अत्यंत विचारोत्तेजक और संवेदनपरक है। यहाँ वे खंडित सत्य हैं, जो अकसर परिवर्तन के पश्चात उपेक्षित कर दिए जाते हैं। यहाँ क्रांतिकारी आंदोलन की चमक नहीं, बल्कि उसका अवशेष है—वह अवशेष, जिसमें आदर्श जीवित तो हैं, पर समाज की प्राथमिकताओं से बाहर हो चुके हैं।

डॉ. माहौर का जीवन एक शिक्षक, विचारक और सदा नागरिक के रूप में इस प्रश्न को बड़ी तल्खी के साथ उठाता है कि स्वतंत्रता के बाद हमने उन क्रांतिपुत्रों के सपनों के साथ क्या किया। यह प्रश्न लेखक ने इस तरह रचे हैं, जिससे पाठक स्वयं टकराता है, उनके जीवन-विवरण में पिरोए हुए ये प्रश्न पाठक को न केवल व्यथित करते हैं, बल्कि हमारे इतिहास और साहित्य को प्रश्नों के घेरे में ला खड़ा करते हैं।

भाषा की दृष्टि से पुस्तक संयमित काव्यात्मकता का बेजोड़ उदाहरण है। लेखक प्रदर्शन अथवा किसी काव्य-चमत्कार का बोझ लेकर नहीं चलता। लेखक की अपनी स्वाभाविक लय है, जो पाठक को घटनाओं के पार उनके अर्थ तक ले जाता है। वर्णन कहीं भी बोझिल नहीं होता, बल्कि स्मृति का रूप लेता चलता है। आपकी शैली अपने नैतिक ठहराव के साथ अत्यंत आकर्षक है—जैसे लेखक जानता हो कि जिस जीवन-सत्य के बारे में वह लिख रहा है, उनके सामने शब्दों को भी अनुशासित रहना चाहिए। यही अनुशासन इस पुस्तक को विश्वसनीय भी बनाता है और मार्मिक भी।

समग्र रूप से यह यह किताब एक स्मृति आख्यान है, जो बड़े ही सरल शब्दों में यह स्पष्ट कर देती है कि इतिहास केवल विजयगाथा नहीं, बल्कि स्मृति का भी अनुशासन होता है। डॉ. भगवान दास माहौर का जीवन इस अनुशासन का उदाहरण है, जहाँ क्रांति नारे में नहीं, बल्कि चरित्र और आचरण में प्रतिफलित होती है।

लेखक की यह पुस्तक उसी चरित्र को शब्दबद्ध कर रही है। इस प्रयास में वह सफल भी हुए हैं। इस पूरी प्रक्रिया में न केवल हमारी साहित्यिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक चेतना अधिक सजग और अधिक मानवीय बनती है, बल्कि वह धीरे-धीरे अनाम और अदृश्य स्वतंत्रता सेनानी को केंद्र में स्थापित कर देते हैं। इस प्रक्रिया में वह एक गुमनाम क्रांतिकारी को दृश्य में लाती है। इस अर्थ में यह पुस्तक अतीत का पुनर्पाठ भर नहीं, बल्कि वर्तमान के लिए एक नैतिक आमंत्रण भी है।

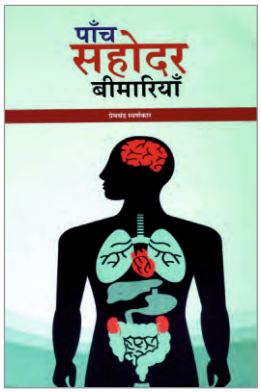

समीक्षक : **कमलेश पाण्डेय 'पुष्प'**

लेखक : **प्रेमचंद्र स्वर्णकार**

प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

पृष्ठ : 86

मूल्य : रु. 140/-

पाँच सहोदर बीमारियाँ

» आज के समय में प्रायः प्रत्येक व्यक्ति कोई-न-कोई बीमारी से ग्रसित है। बीमारियों से ग्रसित होने के कई कारण होते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में मनुष्य को होने वाली पाँच सहोदर बीमारियों के बारे में कुल पाँच अध्यायों के अंतर्गत विस्तृत जानकारी दी गई है। पहले अध्याय 'हृदय रोग और उससे बचाव' में रंगीन आरेख के माध्यम से सीने में हृदय की स्थिति और उसकी संरचना के अलावा अन्य कई आरेखों को दिया गया है। दिल का दौरा क्यों पड़ता है, इसके लक्षण व विभिन्न कारणों के बारे में बताया गया है। हृदय रोगों में एंजाइना (हृदय शूल) की जटिलताओं व हृदयाघात (हार्ट अटैक) की जटिलताओं पर प्रकाश डालते हुए हृदय धमनी रोगों के लक्षण, इलाज एवं खान-पान क्या हो, सब कुछ अच्छी तरह से बताया गया है।

दूसरे अध्याय 'रक्तचाप एवं उच्च रक्तचाप' में हृदय और मस्तिष्क के लिए खतरनाक, उच्च रक्तचाप के कारण, चिकित्सा और बचाव की जानकारी दी गई है। उच्च रक्तचाप का केंद्रीय तंत्रिका तंत्र, आँखों, हृदय व गुर्दों पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को भी विस्तारपूर्वक बताया गया है। आगे इसका आयुर्वेदिक व बगैर दवाओं के, भोजन में सुधार व व्यायाम आदि से इलाज और बचाव की जानकारी दी गई है।

पुस्तक का तीसरा अध्याय है 'मस्तिष्काघात', जिसके प्रकार व लक्षणों के साथ ही शरीर पर इसके प्रभाव को भी बताया गया है। इसमें बीमारी में मस्तिष्क में रक्त के थक्के बन जाते हैं, जिसकी जाँच सी.टी. स्कैन या एम.आर.आई. के द्वारा की जाती है। यही नहीं, इस बीमारी में रीढ़ की हड्डी के अंदर सुसुम्ना नाड़ी के चारों ओर दुहरी झिल्ली में स्थित द्रव की जाँच भी की जाती है। इस बीमारी के इलाज में और भी क्या महत्वपूर्ण है इसकी सटीक जानकारी दिए जाने के साथ ही इसके बचाव हेतु रक्तचाप, मधुमेह, हृदय रोग, कोलेस्ट्राल व धूम्रपान पर नियंत्रण करने की सलाह दी गई है। मस्तिष्क के विभिन्न भागों को आरेख के द्वारा समझाया गया है।

चौथा अध्याय 'मधुमेह' शीर्षक से है। इसमें मधुमेह रोग के सामान्य लक्षण तो बताये ही गए हैं, साथ ही विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार इसको निम्नलिखित पाँच श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है—

1. इंसुलिन आश्रित मधुमेह, 2. इंसुलिन अनाश्रित मधुमेह, 3. कुपोषण जनित मधुमेह, 4. गर्भावस्था का मधुमेह, 5. अन्य प्रकार—जैसे कि वंशानुगत, मोटापा के कारण, विषाणुओं के संक्रमण से, शराब पीने से, मानसिक तनाव आदि से।

लेखक ने इस अध्याय में मधुमेह होने पर कौन-सी जाँच करानी आवश्यक है इसे भी विस्तृत रूप से बताया है। मधुमेह रोगी को आहार में क्या खाना चाहिए एवं किससे परहेज करना चाहिए यह भी अच्छी तरह से बताया गया है। इसके अलावा, मधुमेह से पीड़ित गर्भवती महिलाओं को क्या सावधानियाँ बरतनी आवश्यक है, यह जानकारी भी दी गई है, पेशाब में शर्करा की जाँच स्वयं कैसे करें यह भी बताया गया है। अध्याय के अंत में मधुमेह रोग से बचाव कैसे करें, यह जानकारी भी बहुत उपयोगी लगती है।

पुस्तक में पाँचवाँ अध्याय है 'मोटापा'। मोटापा को लेखक ने मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदयरोग इत्यादि का कारण बताया है। आदर्श वजन क्या है और वजन व मोटापा बढ़ने का कारण क्या है, इसकी जानकारी देते हुए बताया गया है कि मोटापा भोजन द्वारा ऊर्जा लेने और उसके खर्च में असंतुलन होने से बढ़ता है। मोटापे के अन्य कारण भी हैं, जैसे कि सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ, पैतृक गुण, अंतःस्रावी ग्रंथियों में गड़बड़ी, अधिक कैलोरी व चर्बीयुक्त भोजन, शारीरिक श्रम व व्यायाम नहीं करना, लंबे समय तक कुछ विशेष दवाइयाँ लेना। अध्याय में मोटापे के कारण होने वाली विभिन्न परेशानियों व जटिलताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। मोटापे का इलाज व बचाव के अंतर्गत बताया गया है कि भोजन में वसा अधिक न हो, विटामिन व खनिज लवण के लिए खुराक में हरी सब्जियाँ, सलाद, फल इत्यादि की अधिकता होनी चाहिए, अल्कोहल (शराब) का सेवन नहीं करना चाहिए, उपवास व व्यायाम नियमित करना चाहिए। अंत में, ऊँचाई के अनुसार वजन की तालिका के साथ ही खाद्य पदार्थों की एक खास मात्रा में कितनी कैलोरी होती है इसे भी बताया गया है।

पुस्तक के अंत में 'परिशिष्ट' भाग में लिपिड (कोलेस्ट्रॉल) के प्रकार व प्रमुख स्रोत तथा कुछ प्रमुख वसीय अम्लों के बारे में भी बताया गया है।

पुस्तक स्वास्थ्य की देख-रेख से संबंधित जानकारी के तौर पर अत्यंत उपयोगी है। इसमें दी गई जानकारियाँ प्रामाणिक तौर पर सत्य प्रतीत होती हैं, जिनके माध्यम से शरीर को स्वस्थ रखकर जीवन को खुशहाल बनाया जा सकता है।

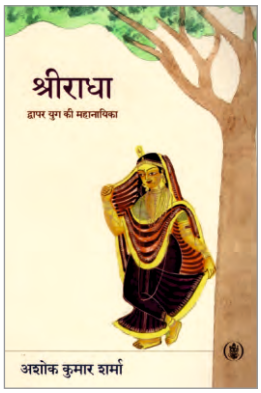

श्रीराधा

द्वापर युग की महानायिका

समीक्षक : **डॉ. शकुंतला कालरा**

रचनाकार : **अशोक कुमार शर्मा**

प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., जगतपुरी, दिल्ली

पृष्ठ : 304

मूल्य : रु. 399/-

देश के विभिन्न प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में विजिटिंग फैकेल्टी रहे अशोक कुमार शर्मा का विपुल साहित्यिक अवदेय है, जिनमें उनकी बहुचर्चित एवं बहुप्रशंसित मौलिक और संपादित पुस्तकें हैं। 'श्रीराधा : द्वापर युग की महानायिका' उनका पौराणिक उपन्यास है। आधुनिक युग में अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक, यथार्थपरक और विज्ञान-फंतासीपरक अनेक आख्यानों वाले उपन्यास लिखे गए हैं। उपन्यास में जीवन अपनी संपूर्णता में प्रायः अपने सभी पक्षों के साथ उद्घाटित किया जाता है। कहा भी गया है कि उपन्यास जीवन का महाकाव्य है।

अशोक कुमार शर्मा का प्रस्तुत उपन्यास श्रीराधा जी के जीवन की परिस्थितियों और संघर्षों से युक्त घटनाओं का समूचा चित्र प्रस्तुत करता है। इसमें श्रीराधा जी के जीवन के जीवंत चित्रों की सहज, स्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्ति हुई है। साथ ही, श्रीकृष्ण के बचपन की प्रिय सखी और उनकी पुरातन प्रीति एवं प्रगाढ़ मित्रता के कई भावना-प्रधान रसपूर्ण चित्र उकेरे हैं। द्वारकाधीश श्रीकृष्ण को कर्तव्यनिष्ठ शासक, कुशल प्रशासक के रूप में दिखाया है। वह केवल कर्तव्यनिष्ठ राजा ही नहीं, वरन कर्तव्यनिष्ठ परिवार के मुखिया भी हैं, जो अपने परिवार और अपने बच्चों को पूरा समय देते हैं। वह केवल राज्य की समस्याओं पर ही नहीं, परिवार की जरूरतों पर भी ध्यान देते हैं। अपनी रोती हुई पुत्री को झट गोद में बिठा लेते हैं। श्रीकृष्ण को अपने राज्य के गुरुकुल में बच्चों के साथ समय बिताते हुए एक आदर्श आचार्य के रूप में दिखाया है, जो बच्चों को आचार, सद्व्यवहार और संस्कारों की शिक्षा देते हैं, ताकि वे राज्य के आदर्श नागरिक बन सकें। समूचे उपन्यास को 23 उपखंड, जिसमें रहस्यमय स्वयंवर, जरासंध का जाल, आक्रोश के व्यूह, नीला बनीं राधा, कृष्ण लापता, विलक्षण सारथी, अनोखा रहस्य गोकुल की यादें, राधा की आँखें, चुगलखोर प्रभावती, चिंता और आशंका, अनसुने रहस्य, वृंदावन में आतंक, चीर-हरण का सच, नाटकीय मित्रता, वृंदावन में विध्वंस, राधा के दर्शन, स्वयंवर और विवाह, वृंदावन में मिलन, राधा की मनौतियाँ, मधुयामिनी के बाद, द्वारका वापसी और जरासंध का वध आदि में समेटा गया है।

प्राचीन पौराणिक कथानक अपनी कल्पनाओं और संभावनाओं की सृष्टि करते हुए भी लेखक ने यथासंभव सत्य को सँभालने की कोशिश की है। उपन्यासकार ने पुस्तक के अंत में लिखा है, 'यह संपूर्ण ग्रंथ 'श्रीराधा' के अस्तित्व के बारे में उपलब्ध वैदिक, पौराणिक, प्राचीन स्थलों, उत्खनन, परंपराओं, मान्यताओं, आध्यात्मिक, पुराज्योतिष, मुझे निरंतर प्राप्त दैवीय प्रेरणा तथा पुस्तक में फुटनोट्स के रूप में उल्लेखित संदर्भों पर आधारित है।... उपलब्ध ज्ञान और प्रमाणों को मैंने परमेश्वर को समर्पित विशुद्ध, अकिंचन भक्तिभाव से प्रभुकार्य मानकर, दैवीय प्रेरणा से परिकल्पित दृश्यों तथा संवादों के सहारे एक उपन्यास के ताने-बाने में बुनने का प्रयास किया है।'

श्रीकृष्ण की रसपरक लीलाओं की रससार सर्वसा है 'श्रीराधा'। वह श्रीकृष्ण की परम अंतरंग आह्लादनीय शक्ति हैं। श्रीकृष्ण और राधा, दोनों एक ही तत्व के दो रूप हैं। दोनों में वास्तविक अभेद है। सूरदास ने भी राधामाधव-परक इस रहस्य को ध्यान में रखा है और जहाँ-तहाँ इसका स्पष्ट और कहीं संदेश का निर्देश किया है—

"राधा माधव दोये नहीं।
प्रकृति पुरुष न्यारे नहीं कबहुँ वेद पुराण कहत सबई...
सूरदास राधा माधव के तन गई एकै प्राण।"

(*अष्टछाप साहित्य में श्रीराधा*)

श्री राधावल्लभ संप्रदाय में श्रीराधा नित्य भाव हैं, उनका विहार भी नित्य है। श्रीकृष्ण की एक राधा है और राधा के एक कृष्ण। जहाँ न कोई साधक है और न साधना और न कोई साध्य है। दोनों ही श्रीतत्व के रूप हैं। दोनों एक हैं और एक होकर दो बने हुए हैं।

सखी संप्रदाय में श्रीराधा श्याम की स्वामिनी हैं। यह विचित्र बात है। सब जग के ठाकुरों के ठाकुर तो हरि हैं, परंतु राधा उनकी भी ठकुरानी है।

भारत की पौराणिक परंपरा के प्राण-स्वरूप हैं श्रीकृष्ण और श्रीराधा के लीला-चरित्र का प्राण हैं उनकी अनन्य संगिनी श्रीराधा। उनको जाने बिना न तो श्रीकृष्ण को जाना जा सकता है, न ही भारतीय संस्कृति के उस अंतःकरण को, जहाँ जीवन और संसार के समस्त कार्य-व्यापारों के सुख-असुख से ऊपर प्रेम को प्रतिष्ठा प्राप्त है। वस्तुतः, राधा प्रेम का मूर्तिभाव स्वरूप हैं, जिनकी औपन्यासिक गाथा प्रस्तुत करती है यह पुस्तक।

श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं, "महामुनि गार्ग जी ने मेरे बचपन में ही राधा के साथ मेरे विवाह की भविष्यवाणी की थी। गोवर्धन पर्वत की घटना के बाद राधा के परिवार ने मेरे साथ ही उनका संबंध निश्चित किया था, यह बात मैं पहले ही बता चुका हूँ।" इस प्रकार स्पष्ट है कि लेखक ने राधा-विषयक अनेक स्रोतों को आधार बनाया है।

ब्लर्ब पर लिखी टिप्पणी के अनुसार, श्रीराधा को लेकर कथा-किंवदंतियों से लेकर परंपरा-पुराणों तक में इतनी कहानियाँ हैं,

जिनसे एक तो जन-मन का उनसे लगाव और उनके प्रति जिज्ञासा का संकेत मिलता है, दूसरी तरफ यथार्थ-अयथार्थ का संशय भी उत्पन्न होता है। इस मायने में यह उपन्यास एक महत्वपूर्ण प्रस्थान माना जाना चाहिए, जिसमें श्रीराधा के संबंध में फैली भ्रांतियों का निराकरण कर उनकी प्रामाणिक कथा दी गई है।

इसी प्रकार, एक बड़ा भ्रम यह भी है कि राधा और श्रीकृष्ण का विधिवत विवाह नहीं हुआ था। जबकि दोनों ने बलराम, अर्जुन, नंद और यशोदा की उपस्थिति में अग्नि प्रदक्षिणा करके विवाह किया था और यही श्रीकृष्ण का भी इकलौता वैवाहिक संबंध था, जिसकी उन्होंने अग्नि प्रदक्षिणा की थी।

पौराणिक या ऐतिहासिक उपन्यास का लेखक कई अर्थों में मुक्त और स्वछंद नहीं होता। इनका उपन्यासकार जहाँ उपन्यास के फैलाव, आकार आदि को लेकर स्वतंत्र हैं, वर्णन पद्धति को लेकर भी आजाद है, पर तथ्यों से छेड़छाड़ करने का उसे अधिकार नहीं। वहाँ वह कोरी कल्पना का सहारा नहीं ले सकता।

कहा जा सकता है कि 'श्रीराधा' उपन्यास राधा के जीवन से बहुत निकट का है। इसमें उनके जीवन की कथा विस्तार के साथ विन्यस्त है। कलात्मकता के साथ राधा के जीवन की व्याख्या इसकी प्रमुख विशेषता है। उपन्यास का उद्देश्य राधा और कृष्ण से जुड़ी हर कौतूहलपूर्ण घटना की शांति है। राधा से जुड़े उनके जीवन के सत्य का कलात्मकता के साथ रसात्मक उद्घाटन करना लेखक का प्रमुख लक्ष्य है और इसमें उन्हें पूरी सफलता मिली है।

हम जब उपन्यास के रचना-तत्वों, कथावस्तु, वातावरण, चरित्र, संवाद, शैली, रस का विश्लेषण करते हैं तो सभी तत्व घुल-मिलकर एक-दूसरे की सहायता करते हुए उपन्यास को रूपायित करते हैं। इन सब तत्वों से प्रमुख तत्व है—भाषा। सरल, सुबोध, प्रवाहमयी भाषा कथा तत्व को संप्रेषणीय बनाती है। एक वाक्य में कहना हो तो कहा जा सकता है कि यह परंपरा, पुराण, शास्त्र आदि तमाम स्रोतों के गहन अध्ययन-विश्लेषण पर आधारित एक अत्यंत पठनीय उपन्यास है।

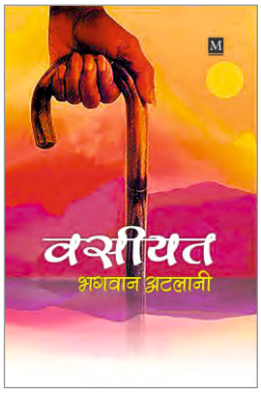

समीक्षक : **डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर**

लेखक : **भगवान अटलानी**

प्रकाशक : विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर

पृष्ठ : 136

मूल्य : रु. 295/-

वसीयत

(कहानी-संग्रह)

'वसीयत' प्रख्यात कथाकार भगवान अटलानी का हाल में आया चुनी हुई इक्कीस ताजा कहानियों का संग्रह है। ये कहानियाँ आधुनिक दौर की शोधात्मकता का परिणाम हैं। उन्होंने जहाँ उपन्यासकार के रूप में अपनी पहचान को निरंतर आगे बढ़ाते हुए उच्च मुकाम पर ही नहीं पहुँचाया, प्रत्युत हिंदी और सिंधी काथनिक और विविध शैलियों से एक कालजयी पहचान देकर कहानी क्रम के इतिहास में जो श्लाघनीय और बेहतर काम किया है, यह उनके कहानीकार की प्रतिष्ठा की दृष्टि से बेजोड़ है।

केवल कहानी कहना उनका मकसद नहीं होता, बल्कि कहानी को एक ऐसी सर्वथा नवीन और सशक्त दिशा दृष्टि देकर उसकी विकास गति को समृद्ध करना भी होता है। इतना ही नहीं, उनकी कहानियाँ अपने पाठकों को बदलती परिस्थितियों में आने वाले संकट का सामना करने की शक्ति भी प्रदान करती हैं।

इन कहानियों को पढ़ते हुए बराबर यह लगता है कि वे तेजी से बदलती परिस्थितियों और परिवर्तन को केवल वर्तमान तक सीमित नहीं रखती हैं, प्रत्युत उसके भविष्य को शाश्वत सत्य के सामने खड़ा करने में भी सक्षम हैं।

अटलानी का उद्देश्य अपने पात्रों के माध्यम से कहानी को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से जोड़ना और उसे पूर्ण स्वतंत्रता के साथ आगे ले जाना है। ऐसा करते हुए उनकी कहानियाँ स्वावलंबी और तत्ववादी होने का परिचय देती हैं। उदाहरणस्वरूप, 'देहदान', 'बाजी उलट गई' और 'जीना यहाँ मरना यहाँ' एकदम यथार्थवादी होने की पहचान देती हैं। 'कस्तूरी मुझ मांहिं' में भोजन करने के लिए ग्रास उठाने और ग्रास को मुँह तक ले जाने की क्रियाओं में थकान अनुभव क्यों होने लगी, यह बड़ा मनोवैज्ञानिक प्रश्न मुद्रा की ओर संकेत देता है। क्रियाएँ संज्ञा की सहयोगी बन जाती हैं और कई बार संज्ञाओं तथा क्रियाओं में कोई अंतर नहीं रहता। 'देहदान' में एक वयोवृद्ध, मानसिक रूप से अपने को पूर्ण स्वस्थ पाता है। शारीरिक स्वास्थ्य क्योंकि बहुत अनुकूल नहीं है इसलिए वह मृत्यु के बाद देहदान की बात सोचता है। इस तरह से कहानीकार अपने पाठक को पात्र के सामने खड़ा करता है और प्रश्नकर्ता आत्म विश्लेषण करते हुए समाधान तक पहुँचता है।

अटलानी की कहानियों के शीर्षकों से कथ्य का आभास मिल जाता है। इसी क्रम में, 'शपथ पत्र', 'सांध्य गीत', 'मुक्ति', 'कायाकल्प' और 'अनुशासन' शीर्षकों को देखा जा सकता है। इनमें जीने या अस्तित्व के लिए अंतर्द्वंद्व जीवंत हो उठा है। 'गाँठ' में स्वप्न या नींद में छाती पर घूँसा लगने से आँख खुल जाती है। यहाँ उनका झुकाव साधारणीकरण पर रहता है। इसी तरह, 'वसीयत' में कोई दबाव या तनाव न होने के बावजूद मृत्यु के बाद संपत्ति बाँटने का उम्रयाफ्ता व्यक्ति का निर्णय पाठक को दिशा दिखाता है।

उनकी सब कहानियाँ तीन वर्ग में विभाजित की जा सकती हैं—सामाजिक, आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक। फिर भी, उनकी सामाजिक आध्यात्मिकता गहराई से मानव-चिंतन में निरंतरता को क्रियाशील बनाए रखती है।

संग्रह में शामिल सभी कहानियाँ तत्कालीन मानव-मन का अंतः विश्लेषण कुछ इस तरह करती हैं कि पाठक एक सर्वथा नए माहौल में अपने को पाता है। भारत विभाजन की छाया कुछ कहानियों में परिलक्षित है। प्रत्येक कहानी मन को बाँध लेती है।

इन कहानियों की सबसे बड़ी अस्मिता त्रासद से अभिव्यक्त समूचे कथानक को संपूर्णता से सहज जोड़ देना है। कुछ कहानियाँ, जैसे—'जाल', 'विजय', 'ओम शांति', द्रविड़ प्राणायाम', 'संजाल' और 'दहशत' में क्रमशः शिक्षामूलक वृत्ति विश्लेषणात्मक होती जाती है। यहाँ कहानीकार का प्रयास इन कहानियों में मनोवैज्ञानिक अंतर्चेतना को चिह्नित करना नजर आता है।

भाषा की दृष्टि से ऐसे स्थल गौरतलब हैं, जो कहानियों को कुशलतापूर्वक नए मोड़ देते हैं।

कहानियों के पात्र गढ़े हुए कतई नहीं हैं, प्रत्युत स्वाभाविक हैं, पात्र मनोविज्ञान का आधार लिये हुए हैं। 'आदेश' में इसकी बानगी बखूबी देखी जा सकती है।

'रणनीति' में टिप्पणी है, "सरकारी अधिकारी बाहर से कभी विपरीत होने का एहसास नहीं कराएँगे।" कहानी में लेखक का यह निष्कर्ष वाक्य है। ऐसी निष्कर्षात्मक छानबीन चिंतन, मनन और गहन चरित्र विश्लेषण का प्रतिफल है।

चरित्र-चित्रण में कहानीकार ने अपने पात्रों की क्रमशः विकसित होती मनोदशा के साथ पूरा न्याय किया है। कहानीकार का यह प्रयास पूर्णतः सफल रहा है कि किसी भी कहानी में वैशिष्ट्य साधारणीकरण पर हावी न होने पाए।

यदि इन कहानियों के सभी पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण पर गहरी छानबीन की जाए तो इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि पाठक स्वयं को एक सर्वथा नई दुनिया में पाता है। कहानियाँ मन को छूती हैं, मस्तिष्क को झिंझोड़ती हैं और आगे पढ़ते जाने के लिए उकसाती हैं।

समीक्षक : **हरिशंकर राढ़ी**

नाटककार : **प्रताप सहगल**

प्रकाशक : अद्विक प्रकाशन, हसनपुर, पटपड़गंज, दिल्ली

पृष्ठ : 204

मूल्य : रु. 310/- (पेपरबैक)

प्रताप सहगल के तीन व्यंग्य नाटक

(नाटक-संग्रह)

सोशल मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मनोरंजन के साधनों के इस युग में गंभीर सरोकार लिये हुए साहित्यिक नाटकों का आना सुखद होता है, भले ही यह आगमन कम और यदा-कदा हो। हिंदी साहित्य में नाटकों का लेखन वैसे भी कम हो रहा है। वर्तमान नाटक लेखन में कुछ नाम जो अपना प्रभाव छोड़ते हैं, उनमें प्रताप सहगल प्रमुख हैं। उनकी लेखनी से तीन लघु नाटकों का एक संग्रह 'प्रताप सहगल के तीन व्यंग्य नाटक' शीर्षक से आया है।

प्रताप सहगल के नाटकों में साहित्य, समाज और काल का अद्भुत समन्वय होता है, विषय-वस्तु या थीम कुछ भी हो। वे उनके बहाने विमर्श के लिए कुछ ज्वलंत प्रश्न छोड़ जाते हैं। बात यदि वर्तमान समाज, खासकर मध्यवर्ग की हो तो उसमें उगने वाली तमाम विसंगतियाँ साकार हो उठती हैं। वे व्यंग्य विधा में लेखन भले न करते हों, उनके पास व्यंग्य की तीक्ष्ण दृष्टि है। निःसंदेह, 'प्रताप सहगल के तीन व्यंग्य नाटक' में वे अपनी दृष्टि, मनोवैज्ञानिक समझ तथा भाषा का उचित प्रयोग करके समाज को उसका ही एक अध्ययन दे जाते हैं।

तीन नाटकों के इस संग्रह में पहला नाटक 'यूँ बनी महाभारत', दूसरा 'मौत क्यों रात भर नहीं आती' और तीसरा नाटक 'अँधेरे में' है, जो पीटर शेफर के नाटक 'ब्लैक कॉमेडी' का सजग हिंदी रूपांतर है। इन तीनों व्यंग्य नाटकों का सिंहावलोकन करके यदि व्यंग्यात्मक निष्पत्तियों की ओर जाएँ तो कहा जा सकता है कि 'यूँ बनी महाभारत' निर्जीविता की मानसिकता में डूबी लालफीताशाही की विसंगतियों पर करारा तंज है। यह तंज बहुत शांत ढंग से चलता है, तिर्यक मुस्कान के लिए विवश करता है। दूसरे नाटक की बात की जाए तो इसे एक दर्दनाक व्यंग्य या करुणा के व्यंग्य की श्रेणी में रखा जा सकता है, जिसमें नाटक का नायक उस मध्यवर्गीय पुरुष का प्रतिनिधित्व करता है, जो आज के भौतिकवादी परिवार की जरूरतों को पूरा करने में असमर्थ पाने पर आत्महत्या के प्रयास में लग जाता है। तीसरा नाटक 'ब्लैक कॉमेडी' इस अर्थ में व्यंग्य है कि वर्तमान के अधिकतर कलाकार-शिल्पकार चरित्रों का जीवन जीविका की जद्दोजहद में अनावश्यक रूप से बिखरने लगता है।

संग्रह का पहला नाटक 'यूँ बनी महाभारत' एक रोचक प्रस्तुति है। अपने कथ्य में नाटक सहज प्रवाह में चलता है और पाठक/दर्शक को आज की व्यवस्था से जोड़ता जाता है। इस नाटक में व्यंग्य की बात करें तो व्यंग्य अपनी विविधताओं के साथ जगह-जगह बिखरा पड़ा है। लेखक ने व्यंग्य परोसने के लिए व्यंग्य के ढेर सारे उपकरणों का प्रयोग किया है। निरीक्षण, अधिकारियों का भाषिक काइयाँपन,

संकेत, तंज, कटूक्ति, वक्रोक्ति आदि बहुत प्रभावी कार्य करते हैं। निर्माताओं को महाभारत पर फिल्म बनानी है और उसके लिए वे सरकारी सहायता चाहते हैं। यहीं से नाटक और नाटक में व्यंग्य का आविर्भाव होता है। फिल्म-निर्माता समाज कल्याण मंत्रालय के अधिकारियों से मिलने जाते हैं तो उनके तर्क और आपत्ति सुनकर समझ नहीं आता कि हँसा जाए या रोया!

दूसरे व्यंग्य नाटक 'मौत क्यों रात भर नहीं आती' में नायक मध्यम आय, किंतु किंचित उच्च आवश्यकताओं में पिसते परिवार का मुखिया होने का दंश झेल रहा है। निरंतर की जद्दोजहद से परेशान होकर उसके अंतर्मन का एक पक्ष उसे आत्महत्या करने को प्रेरित करता है। उसे अपनी नकारात्मकता में एक सकारात्मक पक्ष अपनी मृत्यु से परिवार को मिलने वाले जीवन बीमा की राशि है। उसकी सोच है कि उसकी आत्महत्या से परिवार की आर्थिक स्थिति बेहतर हो जाएगी। एक प्रकार से यह उस मानसिकता का विश्लेषण है, जो समस्या समाधान के लिए समस्यामूलक कदम उठा लेते हैं।

तीसरा नाटक 'अँधेरे में' पीटर शेफर के 'ब्लैक कॉमेडी' का हिंदी रूपांतर है। इसे भारतीय नाट्य परिवेश के लिए नवाचार कहा जा सकता है, जिसमें नाटक के पात्र प्रायः अँधेरे में सक्रिय दिखते हैं। 'ब्लैक कॉमेडी' को मूलतः 'प्रहसन' फार्स की श्रेणी में रखा गया है, हालाँकि इसके लिए हिंदी शब्द 'प्रहसन' समीचीन नहीं है, क्योंकि अंग्रेजी की फार्स में व्यंग्य की महीन परत भी होती है। इसका उद्देश्य दर्शकों को केवल हँसाना नहीं, परिस्थितियों एवं कदाचित चरित्रों पर व्यंग्य करना भी होता है।

अपने अन्य नाटकों की भाँति प्रताप सहगल के ये नाटक (जो प्रायः एकांकी के तुल्य हो सकते हैं) सामान्य मंचीय उपकरणों से मंचित हो सकते हैं। दृश्य बदलने के लिए लाइट का फेड-आउट और फेड-इन पर्याप्त है। चूँकि प्रायः सभी पात्र हमारे समाज से आते हैं, इसलिए उनकी बनावट में भी कोई विशेष तैयारी की आवश्यकता नहीं महसूस होती। कहा जा सकता है कि अपने साधारण तेवर में भी ये नाटक प्रभाव छोड़ने में सफल हैं।

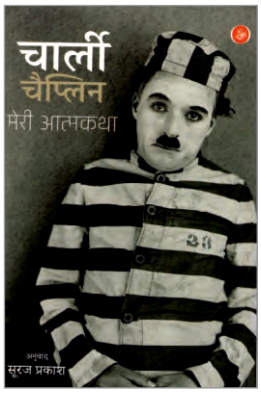

समीक्षक : **पल्लव**

लेखक : **चार्ली चैप्लिन**

अनुवादक : **सूरज प्रकाश**

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

पृष्ठ : 524

मूल्य : रु. 599/-

चार्ली चैप्लिन
मेरी आत्मकथा

विश्व सिनेमा में जिन कलाकारों ने स्थायी और व्यापक प्रशंसा अर्जित की है उनमें चार्ली चैप्लिन का नाम ऊँचा है। 1964 में आई उनकी आत्मकथा विख्यात कथाकार सूरज प्रकाश के हिंदी अनुवाद में राजकमल प्रकाशन से आई है। यह कृति कला और जीवन के संघर्ष का सुंदर दस्तावेज बन गई है। मंचीय कलाकारों की संतान चार्ली का बचपन बहुत अभावों में बीता। उन्होंने लिखा है कि जिस परिवार को रविवार शाम का खाना न मिले तो उसे गरीब ही कहा जाएगा और हमारा परिवार ऐसा ही था। जल्दी ही उनके पिता का निधन हो गया और उनकी माँ मानसिक असंतुलन की शिकार हो गईं।

चार्ली को पहली बार मंच पर तब आना पड़ा जब उनकी माँ की आवाज खराब हो गई और यह वह दिन था जब वे पहली बार मंच पर आए और उनकी माँ आखिरी बार। मंच पर लोकप्रियता अर्जित कर नाट्य मंडली के साथ चार्ली इंग्लैंड से अमेरिका चले गए, जहाँ पहले मंच और फिर फिल्मों के माध्यम से उन्होंने अपूर्व यश और धन अर्जित किया।

अत्यंत कठिन बचपन के बाद चार्ली का वैवाहिक जीवन भी बहुत अच्छा नहीं रहा। उन्होंने कुल चार शादियाँ कीं और उनके ग्यारह बच्चे हुए। आत्मकथा के सबसे मार्मिक अंश उनके संघर्ष के हैं, जो चैप्लिन के व्यक्तित्व के बनने और उनके मजबूत होने का आख्यान भी रचते हैं। उनके पिता के अंतिम संस्कार का प्रसंग है, 'कब्र खोदने वालों ने फटाफट ताबूत पर मिट्टी के लोंदे फेंके। इससे बहुत ही क्रूर किस्म की आवाज हो रही थी। ये भयावह नजारा था और कुल मिलाकर बेहद डरावना था, इसलिए मैं रोने लगा। इसके बाद रिश्तेदारों ने अपनी मालाएँ और फूल उस पर डाले। माँ के पास डालने के लिए कुछ भी नहीं था, इसलिए उसने मेरा बेशकीमती काले बॉर्डर वाला रूमाल लिया और मेरे कान में फुसफुसाई, 'मेरे लाल, ये हम दोनों की तरफ से।' इसके बाद चैप्लिन परिवार रास्ते में एक पब में खाना खाने के लिए रुक गया और उन्होंने भीतर जाने से पहले हमसे बहुत विनम्रता से पूछा कि हमें कहाँ छोड़ दिया जाए। और हमें घर छोड़ दिया गया था।

एक अंश वह, जब बालक चार्ली को अपनी माँ के पागल हो जाने की सूचना मिलती है और वह उसे अस्पताल में छोड़कर आता है, 'जब मैं अस्पताल से घर की तरफ वापिस लौट रहा था मैं सिर्फ सुन्न कर देने वाली उदासी ही महसूस कर पा रहा था। इसके बावजूद, मैं राहत महसूस कर रहा था। क्योंकि मैं जानता था कि अस्पताल में माँ की बेहतर देखभाल हो पाएगी, बजाय घर के अँधेरे में बैठे रहने के, जहाँ खाने को एक दाना भी नहीं है, लेकिन जब वे लोग उसे ले जा रहे थे, तो जिस तरह से उसने दिल चीर देने वाली निगाह से मुझे देखा था, वह मैं कभी भी भूल नहीं पाऊँगा। मैंने उसके सभी सहन करने के तरीकों के बारे में सोचा, उसकी चाल के बारे में सोचा, उसके दुलार

और उसके प्यार के बारे में सोचा, और मैंने उस कृश काया के बारे में सोचा, जो थकी हारी नीचे आती थी और अपने ही खयालों में खोयी रहती थी और मुझे अपनी तरफ लपकते हुए आते देखते ही जिसके चेहरे पर रौनक आ जाती थी।'

फिल्म-निर्माण और व्यवसाय के उजले प्रसंग आत्मकथा में कला तथा व्यवसाय के संबंधों पर विचार के लिए महत्वपूर्ण बन गए हैं। अंतिम अध्यायों में अमेरिका से उनका निर्वासन और वापसी के प्रसंग आए हैं। किताब में अनेक ऐसे वाक्य हैं, जो कभी न भूलने योग्य हैं—

- जिंदगी बहुत खूबसूरत हो सकती है अगर आप उससे डरते नहीं हैं। जीने के लिए आपको चाहिए थोड़ी-सी हिम्मत, थोड़ी-सी कल्पना और थोड़ा-सा गुँथा हुआ आटा।
- मुझे लगता है कि जिंदगी की सबसे बड़ी विडंबना यही है कि हमें सही वक्त पर गलत काम करना पड़ता है।
- हमारी जिंदगी का सबसे मनहूस और बेकार दिन वह होता है जब हम हँसे नहीं होते।
- सृजनात्मक कार्य में सच्चाई जितनी गहरी होगी, वह उतनी ही देर तक बनी रहेगी।
- सादगी हासिल करना बहुत मुश्किल काम होता है।
- हमें असंभव को संभव करने की कोशिश करनी चाहिए। इतिहास गवाह है कि जितनी भी बड़ी सफलताएँ हासिल की गई हैं, वे असंभव को जीतकर ही की गई हैं।
- इस पापी संसार में कुछ भी तो स्थायी नहीं है। यहाँ तक कि हमारी मुसीबतें भी।

लगभग सवा पाँच सौ पृष्ठों में चार्ली के जीवन के साथ-साथ विश्वयुद्धों की भयावहता और साधारण लोगों के संघर्षों को अत्यंत सुंदर ढंग से रच दिया गया है। अपने प्रकाशन के साठ साल बाद भी कोई किताब लगातार पढ़ी जाए, यह बात उसके महत्व को दर्शाती है। प्रकाशक ने इसे सुंदर ढंग से छापा है और 'परिशिष्ट' में चार्ली के कुछ फोटो और उनके जीवन की उपलब्धियों का विवरण भी दिया है। कहना न होगा कि यह आत्मकथा बता देती है कि संसार साधारण मनुष्यों से ही बनता है और वे साधारण मनुष्य यदि असाधारण परिश्रम कर सकें तो उन्हें क्या नहीं मिल सकता?

समीक्षक : **सुमन बाजपेयी**

लेखक : **पंकज सुबीर**

प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली

पृष्ठ : 176

मूल्य : रु. 325/-

ख़ैबर दर्रा

(कहानी-संग्रह)

'अकाल में उत्सव', 'रुदादे सफर' और 'जोया देसाई कॉटेज' जैसी पुस्तकें लिखने वाले पंकज सुबीर प्रायः सभी विधाओं में लिखते हैं। प्रस्तुत कहानी-संग्रह में उनकी कुल नौ कहानियाँ हैं, जिनमें विविधता होने के साथ-साथ नवीनता भी है। स्थितियाँ, घटनाएँ और पात्रों के चरित्र-चित्रण के साथ-साथ उनका असमंजस और सामाजिक व राजनीतिक उठा-पटक को भी बखूबी इन कहानियों के माध्यम से चित्रित किया गया है।

'एक थे मटरू मियाँ, एक थी रज्जो' कहानी समाज और राजनीति के उस छिपे सच को सामने लाती है, जिसे छुपाने के लिए नैतिकता को ताक पर रख कई तरह की बिसात बिछाई जाती है। पत्रकार दुर्गा दास त्रिपाठी, दामोदर, रज्जो और मटरू मियाँ, इन चार पात्रों के इर्द-गिर्द घूमती यह कहानी फिल्म के शॉट्स की तरह बीच-बीच में 'कट' बोलते हुए सीन बदलती चलती है। हालाँकि, परिदृश्य बदलने के बावजूद, लय बनी रहती है। मीडिया के समाज पर होने वाले असर और दूसरों की जिंदगी में ताक-झाँक करने की प्रवृत्ति पर एक तरह से कटाक्ष करती यह कहानी कई परतों को उघाड़ती है। दुर्गा दास अपनी छवि को दुरुस्त रखने के लिए मटरू मियाँ, रज्जो और दामोदर, तीनों का ही दोहन करता है। हालाँकि, वे यही सोचते हैं कि वह उनका शुभचिंतक है। मटरू मियाँ की मृत्यु के समय उसकी बेटी द्वारा (दोनों ही इस बात से अनभिज्ञ हैं) ही खबर को सनसनीखेज बनाकर पेश करना इस बात को चित्रित करता है कि यथार्थ से हम कितने दूर होते जा रहे हैं।

'हरे टीन की छत' में लेखक ने प्रकृति को बहुत सुंदर ढंग से ढालते हुए मीरा और अर्जुन की किशोरवय की प्रेम कहानी को बुना है। चालीस साल बाद पंचमढ़ी लौटी मीरा गेस्ट हाउस के उसी कमरे में ठहरती है, जहाँ पहले रुकी थी। हरे टीन की छत एक बिंब की तरह उसकी यादों के साथ चलती है। कमरे की खिड़की पर बैठे हुए उसने कई बार अर्जुन को लड़की के पहनावे में नाचते देखा था। कविताओं की गुनगुनाहट के बीच मीरा ढूँढ़ ही लेती है उसे। प्रेम का दस्तूर निभाने के लिए जो ब्रेसलेट मीरा ने अर्जुन को दिया था, वह उसने सँभालकर रखा हुआ है। इसे देख मीरा को लगता है, जैसे पहाड़ों के तीखे मोड़ों को पार कर वह समतल रास्तों पर चल रही है। सच, 'हरापन भी यादों की तरह ही होता है, फुरसत के पलों की बरसात का स्पर्श पाते ही एकदम खिल उठता है। जब भी हम सोचते हैं कि यादों का हरापन अब बुझ गया है, तब अचानक बरसात आकर उस हरेपन को फिर से जिंदा कर देती है।'

'खैबर दर्रा' दो संप्रदायों की दुश्मनी और दो युवकों की कथा में एक सुंदर युवती और उसके अपाहिज पिता को जोड़ते हुए, अंत में उन दो हिस्सों को एक करने की कहानी है, जो कभी बँटे न होने के बावजूद सांप्रदायिकता के जहर को लगातार पीते हुए, एक-दूसरे की जान लेने को आमादा हैं। शहर के बीचों-बीच से होकर बह रहे नाले के दोनों तरफ दंगा चल रहा है। इस नाले पर तीन-चार पुल बने हैं, जो शहर के दोनों तरफ के हिस्सों को आपस में जोड़ते हैं। नाला सूखता है तो आने-जाने की पगडंडियाँ बन जाती हैं। इसी रास्ते का नाम है—खैबर दर्रा।

यह कहानी अपने साथ कई कहानियों को साथ लेकर चलते हुए मजहब, दंगे, बदनीयती, खुद को बचाने के संघर्ष के साथ-साथ हृदय परिवर्तन और मानवता की पगडंडियाँ बनाती हुई चलती है। वरना क्योंकर युवक अपने ही कुटिल इरादों पर लज्जित हो अपाहिज पिता और उसकी बेटी की मदद करने को तैयार हो जाता।

'वीरबहूटियाँ चली गई' कहानी दृश्यों को टुकड़ों-टुकड़ों में पिरोते हुए एक कविता की तरह चलती है। इस कहानी में वक्त आहिस्ता-आहिस्ता कदम रखते हुए करवट लेता है, लेकिन समय बीतने के बावजूद बीतता नहीं है। वह बेकरी में काम करने वाला बच्चा, जो आदमी बन चुका है, वह बीमार लड़की, जो स्त्री बन चुकी है, उनकी तलाश जिन्हें पास लाई थी, बीते समय के गलियारे वर्तमान में भी उनके साथ चलते हैं। मनुष्य और प्रकृति की यात्रा साथ चलती है, क्योंकि वे परस्पर एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। बाल-मन बिना तर्क के बस मान लेना चाहता है कि वीरबहूटी ही लड़की को ठीक कर सकती है। वह पूछती है, "वीरबहूटियाँ लाओगे कहाँ से? वहाँ अब कोई जंगल नहीं है।" वह कहता है, "मैं ढूँढ़ लूँगा जंगल को भी और वीरबहूटियों को भी।" वह बीमार लड़की खुशबू से पहचानती है। इमली के पेड़, मुर्गियाँ, चिरमी की बेल, फाख्ता पक्षी, झींगुर, रेड क्रीपर, केक का टुकड़ा, ब्रेड...दृश्य-दर-दृश्य बदलते हैं, पर कहानी की लट नहीं टूटती। अलग शिल्प में बुनी यह कहानी किस्सागोई है।

'देह धरे का दंड' अपनी असली पहचान छिपाने के लिए स्त्री बनकर पति-पत्नी बनकर रहने की दो युवकों की कहानी है। स्त्री बने युवक की मृत्यु होने पर दूसरा युवक उसका पोस्टमार्टम न करने की अपील करता है, ताकि जिस पहचान को छिपाने के लिए उसने स्वयं को जलाया है, वह सामने न आए। 'आसमाँ कैसे-कैसे' कागज की नहीं, जबान की कीमत को रेखांकित करती है। वर्तमान समय में जब आपसी रिश्तों में कड़वाहट घुल गई है, इस तरह के संदेशों की आवश्यकता और बढ़ जाती है। 'कबीर माया पापिणी' कहानी में शराब के ठेके से मिलने वाली रिश्वत की राशि को न छोड़ने के लालच में जिला कलेक्टर अरुण सिंह अपनी बीमार माँ को देखने नहीं जाता और उसकी मृत्यु हो जाती है। दूसरी ओर, फैक्टरी में काम करते समय कर्मचारी की मृत्यु होने पर माँ-बाप दाह संस्कार करने की बजाय मुआवजा लेने के लिए धरने पर बैठ जाते हैं। यह कहानी अंत में टीस के साथ-साथ कई सवाल भी छोड़ जाती है।

अंतिम कहानी 'इजाजत@घोड़ाडोंगरी' में स्त्री-पुरुष संबंधों में देह-सुख को बहुत ही सधे शिल्प के साथ परिभाषित किया गया है। ध्रुव का सुंदर होने और उच्च जाति का अभिमान तब टूट जाता है जब धरा एक आदिवासी रवि को अपना लेती है। लेखक ने धरा की तुलना करते हुए गुलज़ार की 'इजाजत' फिल्म की बात की है, जिसमें रेखा पति नसीरुद्दीन शाह के पैर छूने के बाद शशि कपूर के साथ चली जाती है। लेकिन धरा कहती है, "अगर तुम और तुम्हारी दुनिया मुझे भले ही भागी हुई स्त्री कहती रहे...यदि भागने से ही प्रेम मिलता है तो मैं भागती रहूँगी। जिस जन्म में भी सुंदरता के नशे में चूर तुम-सा पुरुष मिलेगा, मैं उसे छोड़ भाग जाऊँगी।" यह कहानी एक नई सोच को दस्तक और पुरानी व्यवस्थाओं पर प्रहार करती है। इन कहानियों में लेखक की सूक्ष्म संवेदनाओं और किरदारों को सजीवता प्रदान करने की अद्‌भुत कला परिलक्षित होती है।

समीक्षक : **मनोज मोहन**

लेखक : **मेय मस्क**

अनुवाद : **यूनुस ख़ान**

प्रकाशक : राजकमल पेपरबैक्स, दिल्ली

पृष्ठ : 240

मूल्य : रु. 350/-

जब औरत सोचती है

अभी हाल में मेय मस्क की जीवनी 'ए वुमन मेक्स अ प्लान : एडवाइज फॉर अ लाइफटाइम ऑफ एडवेंचर, ब्यूटी, ऐंड सक्सेस' का हिंदी अनुवाद यूनुस ख़ान ने 'जब औरत सोचती है : रोमांच, सौंदर्य और सफलता भरी जिंदगी के नुस्खे' शीर्षक से किया है।

उनका हिंदी अनुवाद इतना प्रांजल है कि एक साफ पानी की नदी के तल पर मौजूद जीव-जंतु तक साँस लेते दिखाई पड़ते हैं। इस किताब के पाँच भागों के शीर्षक दिलचस्प हैं—*खूबसूरती, रोमांच, परिवार, कामयाबी* और *सेहत*। राजकमल पेपरबैक्स ने इस पुस्तक को पॉपुलर गेटअप में प्रकाशित किया है। बत्तीस भाषाओं में छपी इस किताब की लाखों-लाख प्रतियाँ पूरे विश्वभर में बिक चुकी हैं। एक भरी दोपहरी में पढ़े जाने लायक मेय मस्क की यह कहानी एक ग्लैमरस मॉडल की कहानी से कहीं कुछ ज्यादा है। वे दुनिया के प्रसिद्ध अमीरों में शामिल एलन मस्क की माँ हैं, लेकिन इस किताब में एलन मस्क का जिक्र इतना ही भर है कि वे जब-तब अपने इस अमीर बेटे से सलाह भर लेती हैं। आप एक सतर्क पाठक हैं तो किताब पढ़ते हुए यह जान पाते हैं कि एलन मस्क के व्यक्तित्व पर मेय मस्क और परिवार का कितना प्रभाव है।

मस्क परिवार का मूलमंत्र यही है कि हालात चाहे जितने निराशाजनक हों, कोई-न-कोई रास्ता जरूर होता है। 'जियो खतरों के संग, लेकिन सँभलकर' सफलता का यह मूलमंत्र सिर्फ मेय मस्क की सफलता का राज नहीं है, बल्कि उनके परिवार में पीढ़ियों से वर्तमान तक चलता आया है। वह इस परिचय में यह भी कहती हैं कि मेरी तरह आप भी बार-बार शुरुआत करें, पर अगर आपको करनी पड़े तो पहले से योजना बनाएँ। अगर आप जोखिम उठाती हैं, तो एक ज्यादा सनसनी भरी और खुशहाल जिंदगी जी सकती हैं। वह आगे कहती हैं कि अपनी जिंदगी में हर बदलाव की बारीक योजना पहले से बनाएँ और जैसे-जैसे परेशानियाँ सामने आती रहें, आप उनसे निपटती रहें। हर बार आपके सामने नई-नई परेशानियाँ आएँगी, आपको बस अपने पहले कदम की योजनानुसार उससे सामना करना होगा।

एक मॉडल के रूप में मेय मस्क ने फैशन के साथ खुद को हमेशा बदला, लेकिन जीवन में जिम्मेदारी उठाने की आदत को उन्होंने कभी नहीं बदला। वे कहती हैं कि जीवन में आत्मविश्वास का बड़ा महत्व है। इसके लिए अपने पिता को याद करते हुए कहती हैं—वे मार्केटिंग में बड़े माहिर थे। वे अपने सारे मरीजों और दोस्तों को अपने क्लीनिक के सामने आँगन में बने बड़े से बगीचे में आमंत्रित करते थे। अभी जब सारे मेहमान बगीचे में बैठ जाते तो प्रतियोगिता शुरू होती थी, जिसका पोश्चर सबसे अच्छा होता उसे सर्टिफिकेट भी दिया जाता था। वहाँ मौजूद सारे लोग आत्मविश्वास से भरे और खुश नजर आते थे।

यह बचपन की ट्रेनिंग उनके तब काम आई जब उन्होंने अपने जीवन-संघर्ष के क्रम में मॉडलिंग का स्कूल खोला। अपने प्रशिक्षुओं को कहती हैं कि जब आप ढीले-ढाले तरीके से चलती हैं तो आप उदास और असुरक्षित दिखती हैं, पर जब आप तनकर चलती हैं तो आप मजबूत और आत्मविश्वास से भरी दिखती हैं। वह यहीं नहीं रुकतीं, मॉडलों को सीख देती हैं कि उन्हें वक्त पर आना चाहिए, साफ बोलना चाहिए और शरमाना नहीं चाहिए। जब आपके मैनर या आपकी तहजीब अच्छी हो तो आपके भीतर आत्मविश्वास भी ज्यादा होता है। वे खुद भी मॉडल के रूप में सोचती हैं तो सिर्फ अपने रूप की चर्चा करती हैं। ड्रेस या आईलाइनर उनकी छवि को कितना शानदार बनाते हैं।

यह आत्मविश्वास उन्हें उनके पिता से ही आया। उनके पिता जोशुआ हैल्डमैन को घूमना पसंद था। कार से ज्यादा उन्हें एरोप्लेन उड़ाना पसंद था। उनके पास निजी एरोप्लेन बेलांका था और वे उसी प्लेन से अपने पाँच बच्चों के साथ अफ्रीका के जंगलों में दुस्साहसी यात्रा करते थे। उनके परिवार का मूलमंत्र था कि ऐसा कोई काम नहीं है, जो हैल्डमैन परिवार के सदस्य नहीं कर सकते। अड़तालीस साल की उम्र में न्यूट्रीशन की प्रैक्टिस करने के लिए जिस सर्टिफिकेट की जरूरत होती है, उसके लिए अमेरिका में परीक्षा देनी पड़ती है। मेय मस्क उस समय साइटिका के दर्द से परेशान थीं। वह लिखती हैं कि 'उस वक्त मेरा साइटिका का दर्द बहुत बढ़ गया था, इसलिए मैं लोगों से मिल-जुल नहीं पा रही थी। पर मैं दर्द सहते हुए भी किसी तरह काम कर रही थी। मैं पीठ के बल लेटती और पढ़ती रहती। बीमारी को मैंने अपने फायदे के लिए इस्तेमाल कर लिया था।'

पिता से मिली इस शिक्षा को कठिन परिस्थितियों का सामना करते हुए भी वे न सिर्फ खुद के जीवन में, बल्कि अपने बच्चों में भी वह जज्बा उतार पाईं। बच्चों की सफलता की बुनियाद उनके शौक होते हैं, जो वे बचपन में पालते हैं।

आज उनके तीनों बच्चे पूरी तरह सफल हैं। वे साफ-साफ कहती हैं कि सेहत, कारोबार और जिंदगी के मामले में कोई शॉर्टकट नहीं होता। आपको कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। उम्मीद रखनी पड़ती है, ईमानदारी व कॉमन सेंस से काम करना पड़ता है, और योजना बनानी पड़ती है।

इसके बावजूद वे खुद इकहत्तर वर्ष की उम्र में भी पूरे आत्मविश्वास के साथ न्यूड मॉडलिंग भी कर लेती हैं। वे इस बात में विश्वास रखती हैं कि जिंदगी में हमेशा नए दरवाजे खोलते रहने चाहिए।

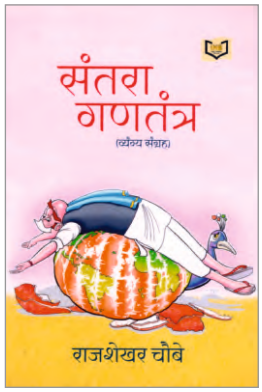

समीक्षक : **डॉ. रमेश तिवारी**

लेखक : **राजशेखर चौबे**

प्रकाशक : इंडिया नेटबुक्स, नोएडा

पृष्ठ : 118

मूल्य : रु. 200/-

संतरा गणतंत्र
(व्यंग्य-संग्रह)

आज हमारे इर्द-गिर्द व्यंग्य का भरपूर लेखन-प्रकाशन हो रहा है। हालाँकि, व्यंग्य की बढ़ती आमद में गुणवत्तापूर्ण या व्यंग्य के सरोकारों की कसौटी पर खरे उतरने वाले व्यंग्य की संख्या को लेकर बहुत अनुकूल स्थिति नहीं दिखाई पड़ती, फिर भी इतना जरूर है कि हवा के प्रतिकूल लिखने वाले लेखक आज भी हमारे बीच में मौजूद हैं और ऐसे रचनाकारों में राजशेखर चौबे का नाम प्रमुख है। राजशेखर चौबे का अद्यतन व्यंग्य-संग्रह है—'संतरा गणतंत्र'। इस संग्रह का प्रकाशन इंडिया नेटबुक्स, नोएडा द्वारा किया गया है। इस संग्रह में पाठकों को लेखक की व्यंग्य रचनाओं में विषय एवं लेखन का एक अलग ही अंदाज पढ़ने को मिलेगा। कहीं बहुत महीन और मारक अंदाज, कहीं गुदगुदाती भाषा-शैली लेखक की रचनाओं को पठनीयता प्रदान करती है और पाठक इनकी रचनाओं से बँधता चला जाता है।

साहित्य में व्यंग्य एक ऐसा कारगर माध्यम है, जिसकी सहायता से हम समाज की विसंगतियों की पहचान के साथ-साथ उन पर सुधार की दृष्टि से प्रहार करते हैं। इस दृष्टि से व्यंग्य को साहित्यिक विधाओं में 'डॉक्टर' माना गया है। व्यंग्य रचते हुए हमारी दृष्टि समाज में व्याप्त कुरीतियों, विकृतियों पर ही जाती है। इसका आशय यह है कि स्वस्थ शरीर को बनाए रखने के लिए चिकित्सक की और समाज को स्वस्थ रखने में बाधक विसंगतियों की पहचान और सुधार की दृष्टि से व्यंग्य की संगति अनिवार्य है।

इस संग्रह के व्यंग्य हमें समय और समाज के साथ लेखक की गहरी संलग्नता का अहसास कराते हैं। लेखक को अपनी पक्षधरता को

लेकर न कोई संशय है, न दुविधा ही। विसंगति, विडंबना की पहचान और उन पर उपयुक्त शब्द-चयन द्वारा भरपूर प्रहार करने में लेखक समर्थ है। संग्रह की रचनाओं में पक्षधरता और सरोकार को लेकर कोई भटकाव या रहस्य जैसी स्थिति नहीं है। आर्थिक मुद्दों पर लेखक की स्पष्ट दृष्टि और विशेषाधिकार का भी साक्षात्कार यह संग्रह कराता है। विमुद्रीकरण से मौद्रीकरण तक, गिरावट का दौर आदि रचनाओं को आप देखें तो उसमें इसकी झलक मिलेगी। *मास्टर स्ट्रोक, जीत की हार, मेंढक और मनुष्य, तीन भाइयों की कहानी, आई एम सॉरी, सपने में परसाई, सत्य से मुठभेड़* आदि लेखकीय सरोकार से जुड़ी महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। लेखक की खूबी यह है कि स्थानीय से लेकर अंतरराष्ट्रीय मुद्दे तक पहुँचने के क्रम में वह अपने आस-पड़ोस से ही पहले रचना का कच्चा माल लेता है। उसके बाद एक तादात्म्य बिठाते हुए अपने उद्देश्य के अनुरूप उन विसंगतियों की रचनात्मक प्रस्तुति करता है। ऐसे ही हमारी बातचीत में अकसर प्रयोग होने वाले मुहावरों, कहावतों की प्रवृत्ति से ध्वनित होने वाली विसंगतियों को भी लेखक ने रचना में प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

"मेंढक व मनुष्य के शरीर की बनावट ही एक जैसी नहीं होती, बल्कि प्रवृत्ति भी एक जैसी होती है। ...पिछले कुछ सालों से पानी को आहिस्ता-आहिस्ता गर्म किया जा रहा है। क्या मनुष्य अपने आपको मेंढक से बेहतर साबित कर पाएगा?" ('मेंढक और मनुष्य' रचना से)। 'आई एम सॉरी' रचना में एक बच्चे के जन्म से लेकर आज तक के विकास के बहाने रचनाकार अपना महत्वपूर्ण संदेश पाठकों तक बड़ी खूबसूरती से पहुँचा देता है। व्यंजना की इस विशेष शक्ति के कारण ही व्यंग्य महत्वपूर्ण हो जाता है। इसे समझने के लिए रचना को पढ़ना अनिवार्य है। इसी प्रकार, नेता और अभिनेता रचना के बहाने आज के भारत की दशा-दिशा को भी दिखाने की कोशिश की गई है।

आज सोशल मीडिया का दौर है। सोशल मीडिया यूजर्स की कई विसंगतियाँ भी हैं। लेखक इन विसंगतियों में से एक टैग करने की प्रवृत्ति को पहचानकर टैग का स्वैग रचना लिखता है। "एक टैगासु लेखक बड़े ही इनोवेटिव हैं। उनकी रचना लगभग रोज छपती है। वे सौ लोगों के फेसबुक वॉल पर एक साथ बमबारी कर उन्हें टैग कर देते हैं। फिर उसी रचना की इमेज फाइल को पोस्ट कर सौ और लोगों को टैग कर डालते हैं। उन्होंने एक फर्जी प्रोफाइल भी बना रखी है।" ('टैग का स्वैग' रचना से)। यही समाज हमारा-आपका समाज भी है। हम सबका अनुभव ऐसा ही है। इस संग्रह की रचनाएँ इन्ही अर्थों में हम सबको हमारे आस-पास से न केवल पुनः परिचित कराती हैं, बल्कि उनकी आदतों से जन्म लेती विसंगतियों से निरंतर सावधान भी करती हैं। इस दृष्टि से इस संग्रह की रचनाएँ पठनीय हैं और विचारणीय भी।

समीक्षक : **अरविंद तिवारी**

लेखक : **हरिशंकर राढ़ी**

प्रकाशक : न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, बुद्धनगर, इंद्रपुरी, नई दिल्ली

पृष्ठ : 146

मूल्य : रु. 299/-

साहित्य के शनिदेव
(व्यंग्य-संग्रह)

'साहित्य के शनिदेव' हरिशंकर राढ़ी का चौथा व्यंग्य-संग्रह है। इसमें विभिन्न विषयों पर कुल 35 व्यंग्य लेख शामिल हैं। राढ़ी जी ललित निबंध भी लिखते हैं और उनके ललित निबंध-संग्रह भी प्रकाशित हैं। इस व्यंग्य संग्रह में साहित्य, समाज, बाबा, कार्यालय आदि विविध विषयों पर लिखे व्यंग्य शामिल हैं। व्यंग्य लेखों के शीर्षक भी पर्याप्त रोचक हैं।

शीर्षक व्यंग्य 'साहित्य के शनिदेव' साहित्य के मठाधीशों पर लिखा गया है। ये मठाधीश लिखते कम हैं, लेकिन पुरस्कार और सम्मेलनों की राजनीति ज्यादा करते हैं। इस व्यंग्य की शुरुआत देखिए, "बहुत बड़े ग्रह हैं वे साहित्याकाश के। साहित्य की धरती से बहुत दूर रहते हैं वे। फिर भी धरती पर सर्वाधिक प्रभाव उन्हीं का है। उनके चारों तरफ एक छल्ला है।" लेखक शनिदेव से मठाधीशों की तुलना करता हुआ कहता है, "अपने साहित्य के शनिदेव भी कम वक्रदृष्टि वाले नहीं हैं। वे अपनी चाल बदलते रहते हैं। कभी किसी के घर में होते हैं तो कभी किसी के।"

इसी प्रकार, 'अफसराहट' व्यंग्य में लेखक कहता है, "मीटिंग सरकारी विभागों की आई. सी. यू. है।" 'अपने-अपने सच' व्यंग्य में लेखक का मत है, "सच का सजीव तथा संपूर्ण दर्शन तब होता है, जब कोई नेता अपना दल छोड़कर दूसरे दल में जा मिलता है। उस समय सत्य के समर्थन में उसकी आत्मा आकर खड़ी हो जाती है।" 'दरबार और अर्जी' बाबाओं पर धारदार व्यंग्य है। 'हवा खराब है' दिल्ली के प्रदूषण पर आधारित व्यंग्य है, जिसमें प्रकारांतर से राजधानी की प्रदूषित राजनीति पर भी निशाना साधा गया है।

'लोन ले लो, लोन' में लोन देने वालों का नजरिया बताया है। उन्होंने मुझे "एक किलो सूखी घास खाकर दो किलो दूध देने वाली गाय समझा होगा।" 'लोकतंत्र की चिंता' में लेखक कहता है, "पहले ये छात्र थे तो कहते थे कि देश में लोकतंत्र नहीं है। दूजे वाले साहब लोग तब हेडमास्टर थे, वे कहते थे कि लोकतंत्र है। छात्र महोदय हेडमास्टर हो गए, वे कहते हैं अब जाकर लोकतंत्र आया है। उधर हेडमास्टर साहब रिटायर हो गए। पेंशन पर जी रहे हैं। वे कहते हैं लोकतंत्र नहीं है।" 'मन की बात' में लेखक कहता है, "कायदे से मुझ जैसे जनता जनार्दन के पास मन होना ही नहीं चाहिए। लेकिन है तो भुगतो।" इसी व्यंग्य में लेखक कहता है, "मन की बात वह करे, जो मनमानियाँ कर सके।"

अंत में, यह कहा जा सकता है कि यह पूरा संग्रह रोचक और पठनीय है। राढ़ी जी को इस पुस्तक के लिए शुभकामनाएँ।

प्रथम दून पुस्तक महोत्सव का आयोजन

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, शिक्षा मंत्रालय और उत्तराखंड सरकार के संयुक्त तत्वावधान में 04 से 12 अप्रैल, 2026 तक देहरादून के परेड ग्राउंड में प्रथम **दून पुस्तक महोत्सव** का आयोजन किया गया, जिसका भव्य शुभारंभ उत्तराखंड के माननीय मुख्यमंत्री श्री पुष्कर सिंह धामी द्वारा किया गया। इस अवसर पर राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित एवं क्षेत्रीय भाषा गढ़वाली-कुमाउनी में अनूदित 26 पुस्तकों का लोकार्पण किया गया।

इस अवसर पर श्री धामी ने दून पुस्तक महोत्सव को साहित्य, संस्कृति और कला का अनूठा संगम बताया। साथ ही, उत्तराखंड को ज्ञान और संस्कृति की देवभूमि बताते हुए उन्होंने अपने संबोधन में कहा कि संस्कृत के महाकवि कालिदास ने इसी भूमि पर 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' की रचना की थी। अपने उद्बोधन में उन्होंने शैलेष मटियानी, लक्ष्मण सिंह बिष्ट (बटरोही) और रस्किन बॉन्ड जैसे प्रख्यात साहित्यकारों के योगदान को भी स्मरण करते हुए कहा कि पुस्तकें मात्र शब्दों का संग्रह नहीं हैं, बल्कि पीढ़ियों तक ज्ञान को संरक्षित करने और आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा देने का माध्यम भी हैं।

एनबीटी के अध्यक्ष प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे ने अपने संबोधन में कहा कि उत्तराखंड भारतीय संस्कृति और शौर्य का संगम है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि जिस प्रकार शरीर के लिए शारीरिक व्यायाम आवश्यक है, उसी प्रकार मन के लिए पुस्तकें पढ़ना अत्यंत महत्वपूर्ण है। वेदव्यास, महर्षि कण्व, सुंदरलाल बहुगुणा, सुमित्रानंदन पंत और बछेंद्री पाल जैसी विख्यात हस्तियों का उल्लेख करते हुए, प्रो. मराठे ने इस क्षेत्र की समृद्ध बौद्धिक विरासत पर प्रकाश डाला। प्रसिद्ध विद्वान आचार्य बालकृष्ण ने पुस्तकों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि यह महोत्सव महज एक मेला नहीं, बल्कि ज्ञान और संस्कृति के आदान-प्रदान का एक मंच है। आधुनिक प्रौद्योगिकी और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विकास पर अपने विचार रखते हुए उन्होंने बताया कि प्रामाणिक ज्ञान केवल लेखकों की मूल रचनाओं को पढ़कर ही प्राप्त किया जा सकता है। उद्घाटन-अवसर पर श्री खजान दास, माननीय कैबिनेट मंत्री; देहरादून के माननीय मेयर श्री सौरभ थपलियाल और देवभूमि विश्वविद्यालय के उपाध्यक्ष श्री अमन बंसल की गरिमामयी उपस्थिति रही।

अपने धन्यवाद-ज्ञापन में, एनबीटी के निदेशक श्री युवराज मलिक ने कहा कि राज्य के गठन के 26 वर्षों में पहली बार उत्तराखंड के आध्यात्मिक केंद्र में साहित्य, कला और संस्कृति को एक साथ लाने वाला ऐसा आयोजन हो रहा है। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि माननीय मुख्यमंत्री द्वारा निर्धारित कार्ययोजना के अनुरूप, यह महोत्सव देश के सर्वश्रेष्ठ पुस्तक मेलों में से एक बनेगा और उत्तराखंड को वैश्विक साहित्यिक मानचित्र पर एक महत्वपूर्ण स्थान दिलाएगा।

'दून पुस्तक महोत्सव' ने पुस्तकों, विचारों और संस्कृति के एक अनूठे संगम के रूप में पूरे देश के पाठकों, लेखकों और कलाकारों को एक मंच प्रदान किया। इस नौ दिवसीय महोत्सव में 300 से अधिक स्टॉल्स लगे, जहाँ विभिन्न भाषाओं की लाखों पुस्तकें प्रदर्शित की गईं। पाठकों के लिए प्रवेश पूर्णतः निःशुल्क रखा गया, जिससे साहित्य की पहुँच जन-जन तक हो सके। 'दून लिट फेस्ट' के मुख्य आकर्षण के रूप में नितिन सेठ, कुलप्रीत यादव, अखिलेंद्र मिश्र, आचार्य प्रशांत, इम्तियाज अली, शुभांशु शुक्ला और लेफ्टिनेंट जनरल सतीश दुआ जैसी प्रतिष्ठित हस्तियों ने विभिन्न पैनल चर्चाओं में हिस्सा लिया। इसके अतिरिक्त, क्षेत्रीय भाषाओं को बढ़ावा देने के संकल्प के साथ इस महोत्सव में 50 से अधिक गढ़वाली और कुमाउनी लेखकों की भागीदारी सुनिश्चित की गई।

इस संकल्प के अंतर्गत 'उत्तराखंड के कुछ चर्चित कवियों का काव्य-पाठ' कार्यक्रम में अर्चना झा, रुचि बहुगुणा उनियाल एवं बुद्धिनाथ मिश्र ने काव्य-पाठ किया। कार्यक्रम का प्रारंभ अर्चना झा के मधुर स्वर में सरस्वती वंदना से हुआ, तो समापन कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे बुद्धिनाथ मिश्र की कविताओं के भावविभोर कर देने वाले पाठ के साथ हुआ। इस सत्र के समन्वयक रहे—राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में संपादकीय विभाग के श्री कमलेश पांडे 'पुष्प'।

इसकी अगली कड़ी में कुमाउनी एवं गढ़वाली में अनूदित पुस्तकों पर चर्चा आयोजित की गई, विषय था—'अनुवाद के रचनात्मक आयाम'। इसमें सभी वक्ताओं ने सारगर्भित विचार रखे। गढ़वाली अनुवादक बीना बेंजवाल ने कहा, "वर्तमान में गढ़वाली के बहुत-से लेखक हिंदी कृतियों का गढ़वाली में अनुवाद कर रहे हैं। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास इस समय गढ़वाली और कुमाउनी भाषा में अनुवाद करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।" कुमाउनी भाषा के चंद्रशेखर तिवारी ने अपने वक्तव्य में बताया कि कुमाउनी के संवर्धन में धार्मिक पुस्तकों का अनुवाद अधिक हुआ है। गढ़वाली अनुवादक शशि भूषण बडोनी का मानना रहा कि किसी भी आंचलिक भाषा को अनुवाद के माध्यम से अधिक-से-अधिक पाठकों तक पहुँचाया जा सकता है। अगली वक्ता गढ़वाली अनुवादक नीता कुकरेती ने कहा, "हम अनुवाद के माध्यम से एक-दूसरे के निकट आते हैं, हमारी सांस्कृतिक पहचान भी बढ़ती है, ज्ञान और साहित्य का प्रसार होता है।" कुमाउनी की वरिष्ठ लेखिका कमला पंत ने कहा, "कुमाउनी एक मीठी बोली है। प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं के नाम अनुवाद में ज्यों-के-त्यों ही ठीक रहते हैं, क्योंकि कई बार उपयुक्त शब्द नहीं मिलते हैं।" इस सत्र के समन्वयक रहे—गढ़वाली अनुवादक रमाकांत बेंजवाल ने ए-आई के खतरों की तरफ संकेत करते हुए कहा कि ए-आई अनुवाद का आधार हो सकता है, बोलचाल में प्रयोग हो सकता है, पर हू-ब-हू अनुवाद नहीं हो सकता।

'बाल साहित्य विमर्श' शीर्षक सत्र में वरिष्ठ बाल साहित्यकार अशोक मिश्र ने कहा, "कविता और कहानी सद्भावों को प्रकट करते हैं। आज के समय में बाल मनोविज्ञान के अनुकूल बाल साहित्य रचे जाने की जरूरत है। इससे बच्चों में पढ़ने में रुचि तो बढ़ेगी ही, उन्हें पढ़ने की सामग्री भी अनुकूल मिलेगी। प्रो. दिनेश चमोला, प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार ने कहा, "बाल साहित्य जीवन में आगे बढ़ने का, कुछ अपने को तलाशने का साहित्य है। बाल साहित्य हमारे जीवन के गलियारे से आता है।" इस कार्यक्रम के समन्वयक रहे—श्री तन्मय ममगई।

पुस्तकों के अलावा, दून पुस्तक महोत्सव 2026 में बच्चों के लिए दैनिक कहानी सुनाने के सत्र, रचनात्मक कार्यशालाएँ, प्रश्नोत्तरी और प्रतियोगिताएँ, साथ ही शिक्षकों के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किये गए। इस महोत्सव में राष्ट्रीय-ई-पुस्तकालय के माध्यम से डिजिटल पठन को बढ़ावा देने का भी प्रयास किया गया, जो 22 से अधिक भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी में हजारों पुस्तकें निःशुल्क उपलब्ध कराता है। पांडव, नरेंद्र सिंह नेगी और वंशिका जोशी जैसे प्रसिद्ध कलाकारों द्वारा सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ और संगीत कार्यक्रमों ने शामों को जीवंत बना दिया, जिससे पूरे महोत्सव में उत्सव का वातावरण बना रहा।

देहरादून पुस्तक परिक्रमा जेबीआईटी परिसर में

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने जेबीआईटी देहरादून के साक्षरता क्लब के सहयोग से देहरादून पुस्तक परिक्रमा के अंतर्गत जेबीआईटी सचल प्रदर्शनी का आयोजन कर पुस्तक प्रोन्नयन की अपनी पहल को आगे बढ़ाया। बहुविषयक पुस्तकों के समृद्ध और विविध संग्रह वाली विशेष रूप से डिजाइन की गई सचल प्रदर्शनी ने छात्रों को कक्षा से परे पढ़ने और ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक सुलभ और आकर्षक मंच प्रदान किया।

जेबीआईटी देहरादून के श्री संदीप सिंघल, उपाध्यक्ष; डॉ. पी.के. चौधरी, निदेशक और श्री विशांत कुमार, प्रशासनिक निदेशक (रजिस्ट्रार), ने 16 मार्च, 2026 को इस प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। पूरे आयोजन के दौरान, बड़ी संख्या में छात्रों ने एनबीटी की विभिन्न विषयों की पुस्तकों का अध्ययन किया। साथ ही, एनबीटी टीम ने छात्रों से परस्पर संवाद किया, उन्हें विभिन्न प्रकार की पुस्तकों से परिचित कराया और संस्थान को पुस्तकों का एक चुनिंदा संग्रह भेंट किया।

इस पहल ने छात्रों में पाठ्यक्रम से इतर पढ़ने के प्रति उत्साह को बढ़ावा दिया और ज्ञानवान और जिज्ञासु बनने में पुस्तकों की भूमिका को अभिव्यक्त किया। युवा पाठकों तक सीधे पुस्तकें पहुँचाकर, देहरादून पुस्तक परिक्रमा ने एक जीवंत पठन-संस्कृति को बढ़ावा देने का प्रयास किया और शैक्षणिक परिवेश में साहित्य के महत्व को पुनर्स्थापित करने में सहयोग प्रदान किया।

'स्त्री की दिव्यता' पुस्तक का लोकार्पण

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर 08 मार्च, 2026 को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा अपने मुख्यालय में प्रसिद्ध लेखक, पत्रकार तथा 'राजस्थान पत्रिका' समूह के प्रधान संपादक श्री गुलाब कोठारी की सद्यःप्रकाशित पुस्तक 'स्त्री की दिव्यता' का लोकार्पण कार्यक्रम का आयोजन किया गया। कार्यक्रम का शुभारंभ एनबीटी के निदेशक श्री युवराज मलिक के स्वागत-उद्बोधन से हुआ। पुस्तक के संबंध में उन्होंने कहा, "गुलाब कोठारी जी ने अत्यंत गूढ़ विचार को आसान भाषा में सरलता से एवं शानदार तरीके से लिखा है। स्त्री का तो पर्यायवाची ही है 'दिव्यता'। यह पुस्तक स्त्री के जीवन की विभिन्न अवस्थाओं और समाज में संस्कारों को आगे बढ़ाने में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका को भारतीय ज्ञान परंपरा के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करती है।"

इस अवसर पर विशिष्ट वक्ता प्रो. कुमुद शर्मा, कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा एवं उपाध्यक्ष, साहित्य अकादेमी ने 'नारी तू नारायणी' की अवधारणा का उल्लेख करते हुए कहा, "भारतीय सभ्यता में स्त्री को समृद्धि, शक्ति और ज्ञान के रूप में देखा गया है तथा वह परिवार ही नहीं, बल्कि राष्ट्र-निर्माण की भी आधारशिला है।" उन्होंने अपने शैक्षिक अनुभवों के कुछ किस्से भी साझा किए। उन्होंने पुस्तक के संदर्भ में विचार व्यक्त करते हुए कहा, "इस पुस्तक में स्त्री 'स्व' के लिए नहीं जीती है। स्त्री की दिव्यता पत्नीत्व और मातृत्व पर केंद्रित है। इस दिव्यता को उसे अर्जित नहीं करना पड़ता है। उसे ईश्वर ने सृजन की शक्ति प्रदान की है। स्त्री की शक्ति 'सृजनशीलता' में ही है।"

श्री रामबहादुर राय, अध्यक्ष, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र एवं वरिष्ठ पत्रकार और चिंतक ने कहा कि अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस पर इस पुस्तक का लोकार्पण समाज को स्त्री के आध्यात्मिक और सांस्कृतिक महत्व की याद दिलाता है। उन्होंने भारतीय चिंतन में 'माँ' को ज्ञान और सृजन की मूल शक्ति बताया। उन्होने आगे कहा कि "माँ ही स्वर्ग है।" गुलाब कोठारी की इस अनुभूति में हम सभी की अनुभूति भी शामिल है। पहले स्वयं को जानें, फिर माँ को जान सकते हैं। माँ को जानकर ज्ञान को जान सकते हैं। इस पुस्तक के हर पन्ने पर ज्ञान का जन्म होता है। 'स्त्री की दिव्यता' का अनुभव करें और उसका प्रसार भी।

पुस्तक के लेखक श्री गुलाब कोठारी ने अपने वक्तव्य में कहा कि कालांतर में भारतीय शिक्षा व्यवस्था में स्त्री के विशिष्ट गुणों और उसकी आध्यात्मिक भूमिका को पर्याप्त स्थान नहीं मिला। साथ ही उन्होंने इस बात पर हर्ष व्यक्त किया कि इन मुद्दों पर अब ध्यान दिया जा रहा है। उन्होंने युवाओं को भारतीय ज्ञान परंपरा से पुनः जोड़ने की आवश्यकता पर बल दिया।

कार्यक्रम के अंत में एनबीटी के मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक, श्री कुमार विक्रम ने धन्यवाद-ज्ञापन प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि न्यास द्वारा अपने प्रकाशन कार्यक्रम में जेंडर विमर्श को अहम स्थान दिया जाता है। बाल साहित्य की पुस्तकों में भी यह ध्यान रखा जाता है कि उसमें किसी भी प्रकार से स्त्री-पुरुष विभेद की बात न आने पाए। इस मौके पर उन्होंने 'Men make war, women make life.' सूक्ति को उद्धृत करते हुए इस बात को भी रेखांकित किया कि वर्तमान समय में सही रूप में जेंडर समानता बनाए रखने के लिए पुरुषों को भी अपने भीतर बदलाव लाना होगा, तभी स्त्री-विमर्श सही दिशा में आगे बढ़ पाएगा।

पीएम-युवा 3.0 मेंटरशिप मास्टरक्लास का आयोजन

पीएम-युवा 3.0 मेंटरशिप मास्टरक्लास के तहत युवा लेखकों के मार्गदर्शन हेतु एनबीटी ने 12 मार्च, 2026 को 'समकालीन जीवनी लेखन' विषय पर एक ऑनलाइन मास्टरक्लास का आयोजन किया। प्रख्यात लेखक और राजनीतिक विश्लेषक श्री शांतनु गुप्ता ने व्याख्यान दिया। इस सत्र में देश भर से चयनित पीएम-युवा 3.0 के लेखकों ने भाग लिया। सत्र के दौरान, शांतनु जी ने एक लेखक और शोधकर्ता के रूप में अपने अनुभव साझा करते हुए एक लेखक की शैली को निखारने में अनुशासन, विचारों की स्पष्टता और व्यापक पठन के महत्व पर प्रकाश डाला। इस मास्टरक्लास में

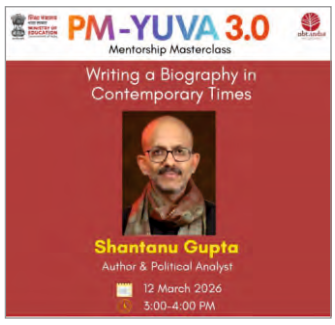

लेखन के व्यावहारिक पहलुओं पर भी ध्यान केंद्रित किया गया, जिसमें कथा संरचना, सशक्त तर्क निर्माण और ऐतिहासिक एवं समकालीन विषयों पर लिखते समय प्रामाणिकता बनाए रखना आदि शामिल रहा। इसका

समापन एक जीवंत प्रश्नोत्तर सत्र के साथ हुआ, जिसमें प्रतिभागियों ने लेखन तकनीकों, शोध विधियों और उभरते लेखकों के सामने आने वाली चुनौतियों पर मार्गदर्शन प्राप्त किया।

इस कड़ी में 25 मार्च, 2026 को प्रतिष्ठित लेखक कर्नल सतीश चंद्र त्यागी ने 'आधुनिक भारत के निर्माता के रूप में सैन्य नेता' विषय पर व्याख्यान दिया। मास्टरक्लास के दौरान, कर्नल त्यागी ने स्वतंत्रता के बाद भारतीय सेना की यात्रा का सशक्त वर्णन किया, जिसमें विभिन्न ऐतिहासिक पड़ावों पर सैन्य अधिकारियों की वीरता और बलिदानों को दर्शाया गया। उन्होंने सेना के चल रहे आधुनिकीकरण के बारे में भी बात की, विशेष रूप से स्वदेशीकरण और आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते कदम पर जोर दिया। ऐतिहासिक और तकनीकी जानकारियों को आपस में जोड़ते हुए, उन्होंने यह प्रदर्शित किया कि किस प्रकार सैन्य विरासत आधुनिक भारत की नींव का काम करती है। युवा लेखकों को सलाह देते हुए कर्नल त्यागी ने इस बात पर जोर दिया कि किसी भी साहित्यिक कृति के दीर्घजीवी होने के लिए गहन शोध अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने लेखकों को अपने लेखन के प्रति ईमानदार रहने और पांडुलिपि तैयार करते समय सैन्य नेताओं के जीवन और मूल्यों से प्रेरणा लेने के लिए प्रोत्साहित किया। सत्र का समापन प्रश्नोत्तर सत्र के साथ हुआ।

मिजो अनुवाद कार्यशाला का आयोजन

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने मिजोरम विश्वविद्यालय के मिजो विभाग के सहयोग से 17 से 18 मार्च, 2026 तक आइजोल स्थित मिजोरम विश्वविद्यालय के विश्वविद्यालय अतिथिगृह के सेमिनार हॉल में दो दिवसीय मिजो अनुवाद कार्यशाला का आयोजन किया। अपनी तरह की पहली इस कार्यशाला का उद्देश्य 60 अंग्रेजी पुस्तकों का मिजो भाषा में अनुवाद करना था।

मिजोरम विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग के प्रोफेसर वनलालछावना ने इस कार्यशाला का उद्घाटन किया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत बहुभाषी शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि जटिल विषयों, विशेष रूप से विज्ञान के क्षेत्र में, को समझने के लिए मातृभाषा आधारित शिक्षा आवश्यक है।

भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची की ओर ध्यान दिलाते हुए, प्रो. वनलालछावना ने भारत की भाषायी विविधता के प्रति गहरा सम्मान व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया और मिजो, तेलुगु, कन्नड़ और बोडो जैसी भाषाओं का उल्लेख किया। उन्होंने मिजो अनुवाद के तकनीकी पहलुओं पर भी प्रकाश डालते हुए बताया कि शाब्दिक और प्रासंगिक अर्थों में अंतर के कारण अनुवादकों को महत्वपूर्ण सांस्कृतिक संवेदनशीलता और सावधानीपूर्वक व्याख्या करने की आवश्यकता होती है।

अपने संबोधन में, एनबीटी के मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक श्री कुमार विक्रम ने एक सशक्त राष्ट्रीय अनुवाद प्रणाली की महत्ता पर प्रकाश डाला। उन्होंने सभी भाषाओं की मूलभूत समानता पर बल दिया और कहा कि अनुवाद ज्ञान तक समान पहुँच सुनिश्चित करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। उन्होंने युवा साहित्यिक प्रतिभाओं के पोषण में पीएम-युवा योजना जैसी पहलों की भूमिका को भी रेखांकित किया। उन्होंने आगामी बोगोटा अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेले में विशिष्ट अतिथि के रूप में भारत की भागीदारी के बारे में चर्चा की। एनबीटी के अंग्रेजी संपादक श्री द्विजेंद्र कुमार ने धन्यवाद-ज्ञापन किया।

मिजोरम विश्वविद्यालय में मिजो विभाग के प्रमुख डॉ. ज़ोरमदिनथरा और पछुंगा यूनिवर्सिटी कॉलेज के डॉ. लाह्लनुनपुयाह रेंथलेई कार्यशाला के स्रोत व्यक्ति थे। जे.एच. लाह्लरिनजुएला, आर लाह्लरियतपुई, ज़ोरमथरी, एम.के. बर्तिला, के.सी. लाह्लथलामुआनी, रोदिंगपुई, लाह्लनुनमावी (नुनोई), एनाबेल लाह्लरियातपुई, लाह्लहरियात्सांगी, के. लाह्लनुनज़ामा, सारा लाह्लरुएल्लुआंगी, एलिजाबेथ लाह्लछंदामी, डेब्बी लाह्लरिनावमी, मालसावमा, गेब्रियल लाह्लमुआंकिना, लाह्लनगैहज़ुआली, लाह्लदुहसाकी, रेम्रुआतफेली तोछावंग, लाह्लमलसावमी राल्ते और लाह्लतलानकिमी समेत 20 अनुवादकों ने कार्यशाला में भाग लिया।

इस कार्यशाला के दौरान, अनुवादकों ने मिजो में अनूदित की जा रही अंग्रेजी पुस्तकों की व्यवस्थित और गहन समीक्षा की। उन्होंने पुस्तकों के गुणवत्तापूर्ण अनुवाद के लिए भाषायी सटीकता, अवधारणात्मक स्पष्टता, शैलीगत सामंजस्य और शब्दावली की एकरूपता पर भी ध्यान केंद्रित किया।

इस कार्यशाला के सफल समापन ने क्षेत्रीय भाषा प्रकाशन के प्रति एनबीटी की प्रतिबद्धता की पुष्टि की, जिसमें इस बात पर जोर दिया गया कि 'सभी भाषाएँ समान हैं।'

'कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न की रोकथाम' विषय पर एक कार्यशाला का आयोजन

कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 के प्रावधानों के अनुसार, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की आंतरिक शिकायत समिति (आईसीसी) ने मुख्यालय सभागार में 18 मार्च, 2026 को महिला कर्मचारियों के लिए उनके अधिकारों के विषय में जागरूकता पैदा करने के लिए एक कार्यशाला का आयोजन किया। इस कार्यशाला का उद्देश्य कार्यस्थल पर महिलाओं को यौन उत्पीड़न संबंधी अधिकारों के बारे में जागरूक करना, खुलकर अपनी समस्या को उजागर करने के लिए प्रोत्साहित करना और संस्थान के कर्मचारियों के बीच गरिमा और सम्मान की संस्कृति को मजबूत करना था।

कार्यशाला के दौरान, सुप्रसिद्ध अधिवक्ताओं—सुश्री शिल्पी सत्यप्रिया सत्यम और सुश्री मुस्कान गुप्ता ने अधिनियम के कानूनी ढाँचे और पेशेवर परिवेश में इसके व्यावहारिक प्रभावों के बारे में बहुमूल्य जानकारी प्रदान की। उन्होंने अनुचित व्यवहार को पहचानने, अपने अधिकारों को समझने और आवश्यकता पड़ने पर समय पर कार्रवाई करने के महत्व पर बल दिया। उन्होंने निवारण के लिए उपलब्ध तंत्रों और सुरक्षित कार्य वातावरण सुनिश्चित करने में आंतरिक शिकायत समिति की भूमिका के बारे में भी विस्तार से बताया।

इस अवसर पर आईसीसी के एनबीटी सदस्यों, जिनमें श्री इमरान-उल-हक और सुश्री कंचन वांचू शर्मा शामिल थीं, ने भी कर्मचारियों को संबोधित किया।

इस सत्र ने प्रतिभागियों को कार्यस्थल पर आचरण और कानूनी सुरक्षा उपायों से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर खुलकर बोलने और स्पष्टता प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। अंतःक्रियात्मक चर्चाओं के माध्यम से, कार्यशाला ने एक स्वस्थ संगठनात्मक संस्कृति को बनाए रखने के लिए जागरूकता, संवेदनशीलता और पारस्परिक सम्मान की आवश्यकता पर बल दिया।

इस तरह की पहल सुरक्षित कार्यस्थल को बढ़ावा देने के प्रति एनबीटी की निरंतर प्रतिबद्धता को दर्शाती है, जहाँ कर्मचारियों को आत्मविश्वास और गरिमा के साथ काम करने के लिए सुरक्षित वातावरण प्रदान किया जाता है।

'मीट द पर्सनैलिटी एंड कैरिकेचर वर्कशॉप' का आयोजन

ईस्ट प्वाइंट स्कूल, वसुंधरा एन्क्लेव में कक्षा 6 से 8 तक के विद्यार्थियों ने 17 अप्रैल, 2026 को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अनुभाग, एनसीसीएल द्वारा आयोजित 'मीट द पर्सनैलिटी एंड कैरिकेचर वर्कशॉप' में भाग लिया, जिसमें रचनात्मकता, जिज्ञासा और कल्पना का अद्भुत संगम देखने को मिला।

सुबह का सत्र कलात्मक ढंग से शुरू हुआ, जिसमें कार्टूनिस्ट, इलस्ट्रेटर और लेखक अजीत नारायण ने कला के प्रति उत्साही युवा विद्यार्थियों को कार्टून निर्माण की मूल बातें सिखाईं, जिसमें विभिन्न चेहरों और भावों सहित ज्यामितीय पैटर्न पर आधारित सरल चित्र बनाना आदि शामिल था। इसके बाद, इस संवादात्मक कार्यशाला में विद्यार्थियों को चेहरे के भावों और भावनाओं को पहचानने और उन्हें कागज पर उतारने का मार्गदर्शन दिया गया। विद्यार्थियों ने इस कला का भरपूर आनंद लिया—अपनी कल्पना और रचनात्मकता को उड़ान दी और मात्र कागज और पेंसिल के माध्यम से इस कला को साकार किया।

रचनात्मकता का यह प्रवाह अगले सत्र में भी जारी रहा, जिसमें कहानीकार नीता जोशी द्वारा संचालित 'रचनात्मक लेखन कार्यशाला' आयोजित की गई, जहाँ युवा लेखकों ने कहानी कहने से लेकर कहानी रचने तक की यात्रा का अन्वेषण किया। विद्यार्थियों ने कहानी गढ़ने की बुनियादी बातें सीखीं—पृष्ठभूमि, पात्रों से लेकर समस्या और अंत में समाधान तक। उन्होंने कुछ संकेतों के आधार पर अपनी कहानियाँ गढ़ीं, जो उनकी अद्भुत रचनात्मकता और कल्पनाशीलता का प्रदर्शन थीं।

दिन का समापन 'राष्ट्रीय ई-पुस्तकालय का परिचय' के साथ हुआ, जहाँ एक रोचक प्रश्नोत्तरी सत्र के माध्यम से विद्यार्थियों ने जाना कि वे शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार की आधिकारिक वेबसाइट और एप्लिकेशन के माध्यम से निःशुल्क ई-पुस्तकों के विशाल संग्रह तक कितनी आसानी से पहुँच सकते हैं, जिसमें 23 भाषाओं में 7,000 से अधिक ई-पुस्तकें उपलब्ध हैं। प्रश्नोत्तरी के विजेताओं को पुरस्कारस्वरूप में R-e-P के स्मृतिचिह्न प्रदान किये गए।

पुस्तकें मिलीं

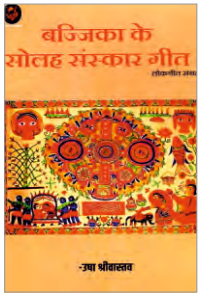

बज्जिका के सोलह संस्कार गीत

(लोकगीत-संग्रह)

उषा श्रीवास्तव

प्रस्तुत पुस्तक में बज्जिका में 16 संस्कारों के भूले-बिसरे लोकगीतों को सँजोया गया है। इस पुस्तक में बज्जिकांचल में प्रचलित गीतों का हिंदी में भावार्थ देते हुए 'परिशिष्ट' में कुछ विशेष लोकभाषा के शब्दों का हिंदी में अर्थ भी प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक में संगृहीत संस्कार गीत प्रायः बज्जिकांचल में 16 संस्कारों, जैसे—गर्भाधान, सीमंतोनयन, अन्नप्रासन, चूड़ाकरण, उपनयन, विवाह आदि के अवसर पर गाए जाते हैं।

शतरंग प्रकाशन, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

पृ. 168; रु. 300.00

जीवन में ज्योतिष

बी. कृष्णा

ज्योतिष पर आधारित प्रस्तुत पुस्तक को छह खंडों में विभाजित किया गया है, यथा—*ज्योतिष बनाम जिंदगी, ग्रह नक्षत्र : ज्योतिषीय तथ्य, ज्योतिष में कुंडली महिमा, ज्योतिषीय उपाय और आयुर्वेद, पढ़ाई, प्रतियोगिता और करियर-कारोबार* तथा *ज्योतिष का दर्शन विज्ञान*। लेखक ने इन अध्यायों में व्यक्ति-निर्माण से कहीं आगे जाकर जीवन-निर्माण कैसे किया जा सकता है, यह बताने का प्रयास किया है।

मैगबुक, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली

पृ. 136; रु. 280.00

नदी और विद्रोह

सरिता कुमारी

प्रस्तुत पुस्तक एक काव्य-संग्रह है, जिसमें निहित कविताओं का मूल स्वर अध्यात्म, स्त्री-विमर्श, विद्रोह, प्रेम एवं दुनियावी है। ये कविताएँ समय-चक्र को रेखांकित करती हैं व निराशा पर आशा का संचार भी करती हैं। कवि का उद्देश्य अपने परिवेश में जो कुछ देखा, सुना और भोगा, उन अनुभूतियों एवं सच्चाइयों को समाज एवं विश्व के समक्ष प्रस्तुत करना है।

वनिका पब्लिकेशंस, विष्णु गार्डन, नई दिल्ली

पृ. 118; रु. 250.00

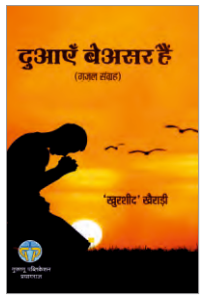

दुआएँ बेअसर हैं

'खुरशीद' खैराड़ी

इस ग़ज़ल-संग्रह में 90 ग़ज़लें संकलित की गई हैं। ग़ज़लों की भाषा सरल है। जहाँ कुछ कठिन शब्द लिये गए हैं, वहाँ उन शब्दों का अर्थ साथ में दिया गया है। संग्रह में संकलित कुछ ग़ज़लें इस प्रकार हैं—*है अजीब खेल नसीब का; खफ़ा खफ़ा है हर नज़र, किसे-किसे जवाब दें; हर दर्द सुनाएँ किस-किस को; हर बात कहाँ लेकर जाएँ* और *आ गई है बहार फूलों पर* आदि।

गुफ्तगू पब्लिकेशन, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

पृ. 112; रु. 300.00

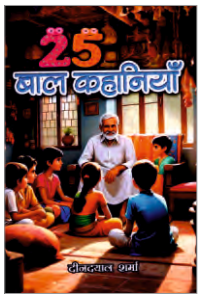

25 बाल कहानियाँ

दीनदयाल शर्मा

प्रस्तुत बाल कहानी-संग्रह में बच्चों के लिए प्रेरणाप्रद कहानियाँ शामिल हैं, जैसे—*दादाजी की दोस्ती, माँ की सीख, पिंकी की चतुराई, अविस्मरणीय चमक, एकता में शक्ति, पतंगों का त्योहार, मोबाइल की लत, ब्रूनो की बहादुरी* आदि। इन कहानियों की भाषा सरल एवं सुबोध है।

संपर्क प्रकाशन, हनुमानगढ़ संगम, राजस्थान

पृ. 64; रु. 150.00

प्रेम एक : रूप अनेक

सुकीर्ति भटनागर

यह कविता-संग्रह है, जिसमें प्रेम के विभिन्न रूपों को कविता के माध्यम से दर्शाया गया है। पुस्तक को 17 खंडों में विभाजित किया गया है, यथा—*ईश्वर प्रेम, माता-पिता प्रेम, भाई-बहन प्रेम, जीवन प्रेम, पति-पत्नी प्रेम, दादा-दादी प्रेम, पौत्र-पौत्री प्यार, प्रकृति प्रेम, पुस्तक प्रेम, विश्व प्रेम, जीव-जंतु प्रेम, कला प्रेम, मानवता प्रेम, मित्र प्रेम, स्व-प्रेम, स्वास्थ्य प्रेम* तथा *खेल प्रेम*।

आनंद कला मंच, भिवानी, हरियाणा

पृ. 128; रु. 300.00

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पुस्तक संस्कृति

के सदस्य बनें

सदस्यता प्रपत्र

नाम : _____

पता : _____

जिला : _____ शहर _____ राज्य _____ पिन कोड _____

फोन : _____ ई-मेल : _____

मैं राशि रु. (अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.) _____ वार्षिक सदस्यता हेतु (बैंक ड्राफ्ट/नगद) _____ ड्राफ्ट संख्या _____ बैंक एवं शाखा द्वारा जारी _____ भेज रहा/रही हूँ (संलग्न)।

सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय), सदस्यता प्रपत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज,
नई दिल्ली-110070
ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com
दूरभाष : 011-26707876

ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण इस प्रकार है :

For	National Book Trust, India
Bank	Canara Bank
Branch	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c No.	3159101000021
IFSC Code	CNRB0003159
MICR Code	110015187

शुल्क भेजने के पश्चात कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।
सदस्यता के आवेदन हेतु इस सदस्यता प्रपत्र की प्रतिलिपि का उपयोग करें।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नवीनतम प्रकाशन

वन देवता का वाहन

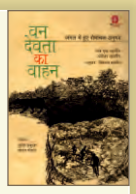

(जंगल में हुए रोमांचक अनुभव)

रज़ा एच. तहसीन, आरेफ़ा तहसीन

अनु. : **हिमालय तहसीन**

इस पुस्तक में जीवन और जंगल की कहानियाँ संगृहीत है। गाँवों और जंगलों में आम जन के देखे-सुने भूतिया नजारों के कई मिथकों को तोड़ने की असरदार विषय-वस्तु इन कहानियों के साथ-साथ चलती है। इससे वृत्तांतों में कभी हल्के-फुल्के तो कभी गंभीर मोड़ आ जाते हैं। यह पुस्तक रोचक एवं आनंददायी है।

पृ. 150; रु. 510.00

विद्रोहिणी नायिका मृदुला साराभाई

राजगोपाल सिंह वर्मा

स्वतंत्रता-प्राप्ति के संघर्ष में, विभाजन के समय दो समुदायों के लोगों के मध्य सौहार्द स्थापित कराने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली, विद्रोही प्रवृत्ति की उस महिला की कहानी, जो वैभव में जन्मी थी, परंतु जिसने अपना सारा जीवन देश के नाम समर्पित कर दिया। ऐसे प्रेरक व्यक्तित्व की सच्ची जीवन गाथा है यह पुस्तक।

पृ. 279; रु. 415.00

स्त्री की दिव्यता

गुलाब कोठारी

ममता, वात्सल्य, पोषण और सृजन की अधिष्ठात्री, दिव्यता की आधार स्त्री को आर्ष ग्रंथों में पूज्या बताया गया है। भारतीय मनीषा के इसी विचार के आधार पर स्त्री की दिव्यता को लेखक ने इस पुस्तक में दार्शनिकता एवं व्यावहारिकता के साथ व्याख्यायित करने का प्रयास किया है।

पृ. 259; रु. 390.00

साइकिल की सवारी

सुदर्शन

यह पुस्तक राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की नवीन एवं महत्वपूर्ण पहल 'आधुनिक कालजयी बाल कहानियाँ' पुस्तकमाला के अंतर्गत प्रकाशित की गई है। जो चीजें बचपन में सीखना रह जाती हैं, बड़े होने पर उनका दुख कितना सालता रहता है, इसी भाव-बोध की एक रोचक कहानी है 'साइकिल की सवारी'। लेखक द्वारा बड़े होने पर साइकिल चलाना सीखने की दिलचस्प कहानी।

पृ. 36; रु. 90.00

चमगादड़ का रस

भीष्म साहनी

यह पुस्तक राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की नवीन एवं महत्वपूर्ण पहल 'आधुनिक कालजयी बाल कहानियाँ' पुस्तकमाला के अंतर्गत प्रकाशित की गई है। प्रकृति ने प्रत्येक प्राणी को कुछ विशेष शक्तियाँ प्रदान की हैं, जो उनके जीवन-निर्वाह में सहायक बनती हैं। परंतु एक की शक्ति दूसरे के लिए मुसीबत बन सकती है, इस कहानी के मुख्य पात्र मधवा के साथ यही होता है।

पृ. 32; रु. 80.00

कुंजी

शिवपूजन सहाय

यह पुस्तक राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की नवीन एवं महत्वपूर्ण पहल 'आधुनिक कालजयी बाल कहानियाँ' पुस्तकमाला के अंतर्गत प्रकाशित की गई है। धन की लालसा मानवीय संबंधों को विकृत करती है। असली संबंध वही हैं, जो स्नेह से बँधे होते हैं, किसी लोभ से नहीं। 'कुंजी' कहानी धन के इसी लोभवृत्ति से पर्दा उठाने का काम करती है। साथ ही, आत्मनिर्भरता का भी पाठ पढ़ाती है।

पृ. 16; रु. 50.00

पर्यावरण पुनर्जागरण

निरंजन देव भारद्वाज

अनु. : **प्रवीण शर्मा**

आज विश्व जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वॉर्मिंग एवं प्रदूषण जैसी अनेक गंभीर समस्याओं का सामना कर रहा है, जिसके परिणामस्वरूप बाढ़, सूखा, चक्रवात आदि विभिन्न प्राकृतिक आपदाएँ जन-जीवन को प्रभावित करती हैं। प्रस्तुत पुस्तक पर्यावरण संरक्षण के प्रति मानवीय चेतना को जागृत करने पर बल देती है।

पृ. 172; रु. 250.00

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070

फोन : 011-35464713, 011-35464766 ● **ई-मेल :** nro.nbt@nic.in

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in